□

प्रकाशक :

देवेन्द्रराज मेहता,

सचिव, प्राकृत-भारती संस्थान, जयपुर

□

प्रथमावृत्ति : १०००

□

मूल्य : दस रुपये

□

सन् १९८०, वि.सं. २०३६, वीर नि सं. २५०६.

□

प्राप्ति-स्थान :

राजस्थान प्राकृत-भारती-संस्थान,

गोलेछा हवेली, मोतीसिंह भोमियो का रास्ता,

जयपुर–३०२००३ (राज)

□

मुद्रक

पॉपुलर प्रिण्टर्स

नवाव साहव की हवेली, त्रिपोलिया बाजार,

जयपुर–३०२००२

प्रकाशकीय

प्राकृत-भारती सस्थान के चतुर्थ प्रकाशन-पुष्प के रूप में 'आगमतीर्थ' पाठकों को समर्पित हैं । भगवान् महावीर द्वारा उद्‍बोधित जैन विचार-धारा एव दर्शन आगम-साहित्य के रूप में उपलब्ध हैं । इस साहित्य की कुछ विशिष्ट सूक्तिया हिन्दी काव्यानुवाद सहित आगमतीर्थ के रूप में प्रकाशित की जा रही हैं ।

भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण-वर्ष के अवसर पर आगम-साहित्य की सूक्तियों का सकलन 'समणसुत्त' के रूप में प्रकाशित हुआ था । इस ग्रन्थ का लाभ सूक्तियों के चयन में प्राकृत भारती-सस्थान ने लिया ।

हिन्दी काव्यानुवाद राजस्थान विश्वविद्यालय के सस्कृत-विभाग के अध्यक्ष और हिन्दी के कवि डा० हरिराम आचार्य द्वारा किया गया हैं । इसके साथ ही डा० आचार्य ने जैन-दर्शन पर अपनी कुछ मुक्तक रचनाएँ भी इस पुस्तक में सम्मिलित की हैं । डा० आचार्य ने मूल अनुवाद एव मुक्तकों का वाचन स्वय कई बडी सभाओं में किया हैं । इसे सुनकर श्रोतागण भाव-विभोर हो जाते हैं । इनकी लोकप्रियता को देखते हुए इस सस्थान द्वारा पुस्तक के रूप में इनके प्रकाशन का निर्णय लिया गया । वैसे भी जैन दर्शन को जन-साधारण की भाषा में प्रकाशित करने की परम्परा रही हैं और यह प्रकाशन उसी के अनुरूप हैं ।

श्रद्धेय विचक्षणश्री जी महाराज ने, कैंसर जैसी विकट व्याधि से ग्रस्त होते हुए भी, इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखी हैं । महाराज साहब ने जैन दर्शन को अपने जीवन में उतार लिया हैं । एक प्रमुख

ये सूक्तियां आचार-संहिता का कार्य कर सकती हैं। ऐसी सूक्तियों को संकलित और संपादित कर सर्वसाधारण में उनको प्रचारित प्रसारित करने की बडी आवश्यकता थी। सन्त विनोबा भावे की प्रेरणा से भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण-वर्ष में, 'समणसुत्त' ग्रंथ के प्रणयन के रूप में यह ऐतिहासिक कार्य जैन-समाज के सभी आचार्यों और विद्वानों के समन्वित पुरुषार्थ और सहयोग से सम्पन्न हुआ।

समणसुत में संकलित गाथाओं का सर्वसाधारण में अधिकाधिक प्रचार प्रसार और भावन हो, इस दृष्टि से इसके पद्यानुवाद करने के कई प्रयत्न इधर हुए। आचार्य श्री विद्यासागर जी ने पूरे समणसुत का पद्यानुवाद किया जो 'जैन गीता' के नाम से प्रकाशित हुआ हैं। इसी प्रकार का प्रयत्न प्रस्तुत ग्रन्थ 'आगमतीर्थ' में किया गया हैं।

आगमतीर्थ के काव्यानुवादक डा० हरिराम आचार्य ने समणसुत से अपनी पसन्द की शताधिक गाथाओं का चयन कर, उनका सरल सुबोध भाषा-शैली और मधुर आकर्षक स्वर-लहरी में भावप्रवण अनुवाद किया हैं। डा० आचार्य संस्कृत साहित्य के विशिष्ट विद्वान् और कुशल प्राध्यापक होने के साथ-साथ सरस कवि, मधुर गीतकार एव सफल नाटककार भी हैं।

पाठक-वर्ग से मैं आशा करती हू कि इसके स्वाध्याय से स्व-पर का भेद-विज्ञान प्राप्त करके संसार सागर से तिरने की भावना उत्पन्न करेंगे जिससे इसका 'आगम-तीर्थ' नाम सार्थक होगा।

२२.१.८०

—विचक्षण श्री
दादावाडी, जयपुर

———

स्वगत-कथन

जैन-आगम-सूत्रो का यह पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद 'आगम-तीर्थ' के रूप मे प्रस्तुत है। महावीर स्वामी की 2500वी जयन्ती के अवसर पर जिस कार्य का श्री गणेश हुआ था, वह क्रमश विकसित होकर पुस्तकाकार बन सका है, इसे मैं किसी अज्ञात प्रेरणा-शक्ति का ही प्रसाद मानता हू।

आगम-सूत्रो का अनुवाद होने के कारण यह कृति धार्मिक-साहित्य की कोटि मे आती है, किन्तु अनुवाद-कार्य मे मेरी दृष्टि मूलत प्राकृत भाषा के प्रति साहित्यिक आकर्षण की रही है। प्राकृत आज अप्रचलित भाषा है, किन्तु उसका ऐतिहासिक ही नही, सास्कृतिक एव साहित्यिक महत्त्व है। 'अमिअ पाइअकव्व' (प्राकृत-काव्य अमृत है)—यह महाकवि हाल की अमर पक्ति है जिसे पढकर मैंने उनकी रचना "गाहासत्तसई" पर 1961 मे शोधकार्य प्रारम्भ किया था किन्तु उस कार्य के दौरान प्राकृत भाषा मे निबद्ध ललित साहित्य के मधुर पाश मे मेरा मन बँधकर रह गया। इसी क्रम मे जैनागम-साहित्य भी पढा और भगवान् महावीर की कृपा से उनकी वाणी के चुने हुए मुक्ताओ को हिन्दी पद्यो मे अवतरित करने की बलवती आकाक्षा फलवती होती चली गई।

आगम-तीर्थ मे कुल 232 सूत्रो का अनुवाद सकलित है, जिन्हे मगल, धर्म, आचार, चिन्तन और दर्शन नाम से पाँच पर्वों मे विभाजित किया गया है। अन्त मे सृजन-सुमन शीर्षक से कुछ स्वरचित स्वतन्त्र कविताओ को भी स्थान दिया गया है। 232 सख्या के तीनो अको का योग होता है—सात। सात का अक जैन-परम्परा मे पवित्र और मगलमय माना जाता है।

ये 232 सूत्र विभिन्न आगम-सूत्रो से संकलित हैं। 'समणसुत्त' के आलोक मे जिन स्रोतो से इन सूक्तियो को ग्रहण किया गया है, उनका उल्लेख पुस्तक के अन्त मे 'गाथा-सकेत-सूची' मे कर दिया गया है।

यह 'आगम-तीर्थ' वाद-मुक्त, विवाद-निरपेक्ष विशुद्ध महावीर-वाणी का विनम्र अनुवाद-काव्य है, जिसमे अवगाहन करने वाले सहृदय को जैन-धर्म के महान् सिद्धान्तो का सरस परिचय मिलेगा।

प्रकाशन से पूर्व इन रचनाओं को मुनिश्री विद्यानन्दजी, आचार्य श्री तुलसी, मुनिश्री नथमलजी, मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी, आचार्य श्री हस्तीमलजी, मुनिश्री सुशील कुमारजी, साध्वीश्री मणिप्रभाश्री जी तथा असख्य श्रावकगण ने मुझसे सुना-सराहा एव अपना आशीर्वाद प्रदान किया है।

जैन-धर्म के सभी सहृदय धर्म-परायण सज्जन इसे ग्रहण करें, अगीकृत करें, हृदयगम करें—यही कामना है।

पर्णकुटी, गगवाल पार्क
जयपुर
महाशिवरात्रि, वि. स. २०३६

विनयावनत,
डॉ० हरिराम आचार्य

समर्पण

उन पुण्यात्माओं को

जो

जैनागम की भाषा में

सम्यक् आचार की प्रतिमूर्ति हैं।

आगम-तीर्थ : पर्व-परम्परा

- मंगल-पर्व
- धर्म-पर्व
- आचार-पर्व
- चिन्तन-पर्व
- दर्शन-पर्व

एवं

- सृजन सुमन

आगम-तीर्थ : सूत्र-परम्परा

मंगल–पर्व

मंगलसुत्तं

णमो अरिहंताणं ।
णमो सिद्धाणं ।
णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं ।
णमो लोए सव्वसाहूणं ।।१।।

एसो पंच णमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ।।२।।

मंगल-सूत्र

नमन हमारा अरिहन्तो को,
जो जग के सब ताप मिटाते।
जिनकी पावन चरण-धूलि से,
पग-पग पर तीरथ बन जाते ।।

नमन हमारा सिद्धजनो को,
तोड चुके जो भव की कारा।
जिनके सूर्य-सदृश नयनो से,
बहती है करुणा की धारा ।।

नमन हमारा आचार्यों को,
विश्व-वन्द्य जो आचरणो से।
सहज मुक्ति लिपटी रहती है,
जिनके मगलमय चरणो से ।।

फिर है नमन उपाध्यायो को,
जो जग मे निर्ग्रन्थ कहाते।

ज्ञान-ज्योति से तिमिर मिटाकर,
पथ-भूलो को राह दिखाते ।।

नमन हमारा साधुजनो को,
जो परहित के है अवतारी।
कोटि-जनो के लिए बनी है,
जिनकी पावन निधिया सारी ।।१।।

पाँच नमन ये पुण्य-विधायक,
इनसे होता पाप-शमन है ।
सभी मंगलो मे मंगलमय,
यही प्रथम मगलाचरण है ।।२।।

———

अरहंता मंगलं ।
सिद्धा मंगलं ।
साहू मंगलं ।
केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥३॥

अरहंता लोगुत्तमा ।
सिद्धा लोगुत्तमा ।
साहू लोगुत्तमा ।
केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥४॥

अरहंते सरणं पवज्जामि ।
सिद्धे सरणं पवज्जामि ।
साहू सरणं पवज्जामि ।
केवलि-पण्णत्तं धम्मं पवज्जामि ॥५॥

मंगल है अरहन्त हमारे,
मगलमय है सिद्ध हमारे ।
मगलमय साधूजन सारे,
मगलमय है धर्म लोक मे,
जो कि केवली-प्रतिपादित है ।।३।।

लोकोत्तम अरहन्त हमारे,
लोकोत्तम है सिद्ध हमारे ।
लोकोत्तम साधूजन सारे,
लोकोत्तम है धर्म विश्व मे ।
जो कि केवली-प्रतिपादित है ।।४।।

अरहन्तो की शरण मैं स्वीकार करता हूं,
सिद्धजनो की शरण मैं स्वीकार करता हूं ।
साधुजनो की शरण मैं स्वीकार करता हू,
सदा केवली-कथित धर्म की
शरण मैं स्वीकार करता हू ।।५।।

———

पंच-परमिट्ठी-झाणं

झायहि पंच वि गुरवे,
मंगल-चउ-सरण-लोय-परियरिए ।
णर-सुर-खेयर-महिए,
आराहण-णायगे वीरे ॥

घण-घाइ-कम्म-महणा,
तिहुवण-वर-भव्व-कमल-मत्तंडा ।
अरिहा अणंतणाणी,
अणुवम-सोक्खा जयंतु जए ॥

अट्ठविह-कम्मवियला
णिट्ठियकज्जा पणट्ठसंसारा ।
दिट्ठ-सयलत्थसारा
सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ॥

पंच-परमेष्ठी-ध्यान

जो है मगलमय चतुः शरण,
लोकोत्तम आराध्य परम है।
नर-सुर-नभचर गण से पूजित,
कर्म-शत्रु के वीर विजेता है, नायक हैं।

आओ ऐसे पंच गुरुजनों का,
तन्मय हो ध्यान करें हम ॥६॥

सघन घाति-कर्मों के जो मन्थनकर्त्ता है,
त्रिभुवन के वर भव्य-कमल के जो दिनकर है।
जो अनन्त विज्ञानी, अनुपम सुखनिधान हैं,
जग मे ऐसे अर्हन्तो की सदा विजय हो ॥७॥

जो है निष्ठित-कार्य, अष्टकर्मों से विरहित,
जन्म-मरण के भव-बन्धन से जो विमुक्त हैं।
सकल-तत्त्व-दर्शन के जो महान् द्रष्टा हैं,
ऐसे सिद्ध पुरुष मुझको भी सिद्धि-दान दें ॥८॥

पंच-महव्वय-तुंगा,
तक्कालिय-सपरसमय-सुदधारा ।
णाणा-गुणगण-भरिया,
आइरिया मम पसीदंतु ॥

अण्णाण-घोर-तिमिरे,
दुरंत-तीरम्हि हिंडमाणाणं ।
भवियाणुज्जोययरा,
उवज्झाया वरमदिं देंतु ॥

थिर-धरिय-सीलमाला,
ववगय-राया जसोह पडिहत्था ।
बहु-विणय-भूसियंगा,
सुहाइं साहू पयच्छंतु ॥

अरिहंता असरीरा,
आयरिया उवज्झाय मुणिणो ।
पंचक्खर-निप्पण्णो,
ओंकारो पंच परमिट्ठी ॥

पंच महाव्रत के पालन से जो उन्नत हैं,
तत्कालीन स्व-पर-समयो के श्रुत-धारक हैं।
नाना गुण-गण के वैभव से जो मडित हैं,
वे आचार्य सदा मुझ सेवक पर प्रसन्न हो ॥९॥

जो अज्ञान-तिमिर के दुस्तर महासिन्धु मे,
दिशाहीन असहाय भटकते जीव-गणो को,
दिव्य-ज्ञान की परम-ज्योति से पथ दिखलाते,
ऐसे उपाध्याय-जन मुझको उत्तम गति दें ॥१०॥

शील-मालिका को जो नित धारण करते हैं,
राग-रहित है, कीर्ति-पुञ्ज से जो समृद्ध है।
प्रवर विनय से जिनका अंग-अंग भूषित है,
ऐसे सज्जन साधु हमे सुखकोष दान दे ॥११॥

अर्हत्, अशरीरी, आचार्य, उपाध्याय, मुनि—
इन नामो के आदि अक्षरो से निष्पादित,
नाम 'ओम्' है, शब्दब्रह्म है, बीजरूप है।
और पच परमेष्ठी गुरुजन का वाचक है ॥१२॥

———

अरहंत–वंदणं
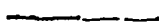
उसहमजियं च वंदे,
संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं,
जिणं च चंदप्पहं वंदे ।।

सुविहिं च पुप्फयंतं,
सीयलं सेयंस वासुपुज्जं च ।
विमलमणंत-भयवं,
धम्मं सन्ति च वंदामि च ।।

कुंथुं च जिणवरिन्दं,
अरं च मल्लि च सुव्वयं च णमिं ।
वन्दामि रिट्ठणेमिं,
तह पासं वड्ढमाणं च ।।

चंदेहि णिम्मलयरा,
आइच्चेहिं अहियं पयासंता ।
सायरवर-गंभीरा,
सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ।।

मैं चौबीस अर्हतों का वन्दन करता हूं—
ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन,
सुमति, पद्मप्रभ और सुपार्श्व।
चन्द्रप्रभ जिनके सुनाम है ॥१३॥

मैं चौबीस जिनो का शुभ वन्दन करता हू—
सुविधि (नाम है पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयास
वासुपूज्य, श्रीविमल, अनन्त नाम है जिनका।
धर्म और प्रभु शान्ति-विश्व मे वन्दनीय हैं ॥१४॥

जिनवरेन्द्रगण का मैं शुभ-वन्दन करता हू—
कुन्थु और अर, मल्लि, सुव्रत, नमि,
(अ) रिष्टनेमि के बाद पार्श्व, फिर वर्धमान है,
[ये चौबीस तीर्थङ्कर—जो सदा सभी के वन्दनीय हैं] ॥१५॥

चन्द्रगणो से शुभ्र विमलतर,
आदित्यो से अधिक भास्वर।
सागर से गम्भीर – जगत् में,
सदा सिद्धगण मुझे सिद्धि दे ॥१६॥

———

महावीर-त्थवण-सुत्तं

णाणं सरणं मे दंसणं,
च सरणं च चरिय सरण च।
तव संजम च सरणं,
भगवं सरणो महावीरो ॥

से सव्वदसी अभिभूय-णाणी,
णिरामगंधे धिइम ठियप्पा।
अणुत्तरे सव्वजगंसि विज्ज,
गथा अतीते अभए अणाऊ ॥

से भूइपण्णे अणिएअचारी,
ओहंतले धीरे अणंतचक्खू।
अणुत्तरे तवइ सूरिए व,
वइरोयणिंद व तम पगासे ॥

महावीर-स्तवन-सूत्र

ज्ञान मेरा शरण, दर्शन भी शरण है,
और सच्चारित्र्य-पालन भी शरण है।
शरण है मेरा अडिग तप और सयम,
महावीर महान् प्रभु मेरी शरण है।।

महावीर भगवान्, सर्वदर्शी, धृत-केवल-ज्ञान थे,
धैर्यशील, स्थिर-आत्म, विश्व मे अद्वितीय विद्वान् थे।
मूल और उत्तर-गुण-मण्डित, सच्चारित्र्य-निधान थे,
ग्रन्थातीत, अनायु, अभय—श्री महावीर भगवान् थे।।

महावीर थे भूतिप्रज्ञ-अनिकेतचरण थे,
धीर अनन्तचक्षु थे, वे ससार-तरण थे।
दिव्य ताप मे अद्वितीय जैसे दिनकर थे,
तम के उद्भासक वे ज्योतित वैश्वानर थे।।

हत्थीसु एरावणमाहु णाए,
सीहो मिगाण सलिलाण गंगा।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवो,
निव्वाणवादीणिह नायपुत्ते ॥

दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाण,
सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति।
तवेसु वा उत्तम बंभचेर,
लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥

जयइ जग-जीव-जोणी-,
वियाणओ जगगुरू जगाणंदो।
जगणाहो जगबंधू,
जयइ जगप्पियामहो भयवं ॥

जयइ सुयाणं पभवो,
तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ।
जयइ गुरू लोगाणं,
जयइ महप्पा महावीरो ॥

जय वीयराय! जग-गुरू!
होउ मम तुह पभावओ भयवं।
भवणिव्वेओ मग्गा—
णुसारिया इट्ठफलसिद्धी ॥

जैसे गज-समूह मे ऐरावत वरिष्ठ है,
नदियो मे गगा, पशुओ मे सिह श्रेष्ठ है ।
विहगो मे विशिष्ट विनता का विनत पुत्र है,
त्यो निर्वाणवादियो मे वर ज्ञात पुत्र' है ।।

जैसे अभयदान दानो मे श्रेष्ठ दान है,
सत्यो मे निर्दुष्ट वचन का अधिक मान है ।
तपोजगत् मे ब्रह्मचर्य जैसे सर्वोत्तम,
वैसे श्रमणो मे है ज्ञातपुत्र लोकोत्तम ।।

जगत्-जीव के उद्गम के विज्ञायक की जय,
जगद्गुरू की, जगदानन्द-विधायक की जय ।
जगन्नाथ की, जगद्बन्धुवर की हो जय-जय,
जगत्-पितामह प्रभु परमेश्वर की हो जय-जय ।।

द्वादशाग श्रुत-रत्नो के सागर की जय हो,
अर्हन्तो मे अन्तिम तीर्थङ्कर की जय हो ।
लोको के गुरुवर गम्भीर धीर की जय हो,
जग मे श्रमण-महात्मा महावीर की जय हो ।।

हे वीतराग ! हे जगद्गुरो ! हे भगवन् !
दो निज प्रभाव से यही दान करुणाघन !
मै भव-विरक्त हो, मोक्ष-मार्ग पर चलकर,
पाऊँ अभीष्ट-फलसिद्धि—दयामय जिनवर ! !

आगम–लक्खणं

तस्स मुहुग्गदवयणं,
पुव्वापरदोसविरहिय सुद्धं ।
आगममिदि परिकहियं,
तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ।।

अरहंत भासियत्थं,
गणधरदेवेंहि गंथियं सम्म ।
पणमामि भत्तिजुत्तो,
सुदणाण–महोदहिं सिरसा ।।

संघ सुत्तं

संघो गुणसंघाओ,
संघो य विमोचओ य कम्माणं ।
दंसण – णाणचरित्ते,
संघायंतो हवे संघो ।।

रयणत्तयमेव गणं,
गच्छं गमणस्स मोक्खमग्गस्स ।
संघो गुण-संघादो,
समयो खलु णिम्मलो अप्पा ।।

आगम–लक्षण

अर्हत् के मुख से उद्गत है,
जो पूर्वापर-दोषरहित है,
ऐसे शुद्ध वचन को हम कहते है 'आगम',
है तथ्यार्थ वही जिसका आगम है उद्गम ।

अर्हन्तो का उपदिष्ट अर्थ है जिसमे,
गणधर–देवो ने किया सूत्र मे ग्रन्थन ।
श्रुतज्ञानरूप उस दिव्य महासागर का,
नतमस्तक होकर करता हू मैं वन्दन ।।

संघ-सूत्र

कर्मों का है ख्यात विमोचक,
जो गुण का सघात कहाता ।
रत्न–त्रय का जो सघातक,
वही 'सघ' जग मे कहलाता ।।

जिनमत मे रत्न–त्रय 'गण' है,
मोक्ष-मार्ग मे गमन 'गच्छ' है ।
गुण-समूह का नाम 'संघ' है,
'समय' आत्मा विमल स्वच्छ है ।।

कम्म–रय–जलोह–विणिग्गयस्स,
सुय – रयण – दीह – नालस्स ।
पच महव्वय–थिर – कण्णियस्स,
गुण – केसरालस्स ॥

सावग–जण– महुयर–परिवुडस्स,
जिण – सूरतेय – बुद्धस्स ।
सघ – पउमस्स भद्दं,
समण – गण – सहस्सपत्तस्स ॥

[गीति]

संघ तो शतदल कमल है,
कर्म-रज की जल-सतह पर तैरता जो,
नीर से निर्लिप्त, विकसित है, विमल है ।।

×

दीर्घ जिसकी नाल है श्रुत-रत्न सुन्दर,
हैं महाव्रत पच जिसकी कर्णिका स्थिर,
और गुण-समुदाय ही केसर-मुकुल है ।।

××

सदा श्रावक-मधुकरों से जो घिरा है,
और जिन-रवि की प्रभा से जो खिला है,
श्रमण-गण जिसका प्रफुल्लित पत्र-दल है ।।

×××

यह कमल जग मे कभी ना म्लान हो,
सदा ही इस कमल का कल्याण हो,
प्राप्त जिसको जिन-कृपा का रश्मि-फल है ।।

———

धम्म-सुत्तं

धम्मो मंगल – मुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं णमंसंति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

धम्मो वत्थुसहावो,
खमादि भावो य दसविहो धम्मो ।
रयणत्तयं च धम्मो,
जीवाणं रक्खणं धम्मो ।।

जरा – मरण – वेगेणं,
वुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठा य,
गई सरणमुत्तमं ।।

धर्म-सूत्र

धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है,
अहिंसा – संयम तपोमय जो।
देव भी उसको नमन करते,
धर्म मे जिसका सदा मन हो।।

वस्तु – स्वभाव धर्म होता है,
है क्षमादि दश पावन धर्म।
रत्नत्रयी भी परम धर्म है,
है जीवो का रक्षण धर्म।।

जरा – मरण के प्रबल वेग से,
सतत समय – धारा मे बहते।
गोते खाते प्राणिमात्र के लिए,
धर्म ही एक द्वीप है।।
धर्म प्रतिष्ठा,
धर्म एक गति,
और धर्म ही श्रेष्ठ शरण है।।

जहा सागडिओ जाणं,
समं हिच्चा महापहं।
विसमं मग्ग - मोइण्णो,
अक्खे भग्गम्मि सोयई ।।

एवं धम्मं विउक्कम्म,
अहम्मं पडिवज्जिआ ।
बाले मच्चुमुहं पत्ते,
अक्खे भग्गे व सोयई ।।

जा जा वच्चइ रयणी,
न सा पडिनियत्तई ।
अहम्मं कुणमाणस्स,
अफला जन्ति राइओ ।।

जा जा वच्चइ रयणी,
न सा पडिनियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्स,
सफला जन्ति राइओ ।।

जैसे गाड़ीवान अनाडी जानबूझकर,
सीधा – सरल राजपथ तजकर,
विषम मार्ग पर शकट चलाता,
और राह मे कही शकट की
धुरी टूट जाने पर रोता-पछताता है;

वैसे ही, हर मूरख प्राणी जानबूझकर,
सीधा-सरल धर्म-पथ तजकर
है अधर्म का पथ अपनाता,
और मृत्यु–मुख में जीवन की
धुरी टूट जाने पर रोता-पछताता है ।।

जो जो रात वीत जाती है,
वह न लौटकर वापस आती ।
जो अधर्म का पालन करता,
उसकी सभी रात्रियाँ ढलती अफला होकर ।।

जो जो रात वीत जाती है,
वह न लौटकर वापस आती ।
किन्तु धर्म-पालन करता जो,
उसकी सभी रात्रियाँ ढलती सफला होकर ।।

जरा जाव न पीडेई,
वाही जाव ण वड्ढई।
जाविंदिया ण हायंति,
ताव धम्मं समायरे ।।

जहा य तिण्णि वणिया मूलं घेत्तूण णिग्गया,
एगोत्थ लहई लाहं एगो मूलेण आगओ।
एगो मूलं पि हारित्ता आगओ तत्थ वाणिओ,
ववहारे उवमा एसा एवं धम्मे वियाणह ।।

धम्म–चक्क–सुत्तं
(अहिंसा)

सव्वेसिमासमाणं,
हिदयं गब्भो व सव्वसत्थाणं।
सव्वेंसि वदगुणाणं,
पिंडो सारो अहिंसा हु ।।

तुंग न मंदराओ,
आगासाओ विसालयं नत्थि।
जह तह जयंमि जाणसु,
धम्ममहिंसासमं नत्थि ।।

जब तलक आये बुढापा, देह का कंचन गलाये,
व्याधियों की फौज चढ़कर शक्ति सारी लील जाये।
जब तलक है इन्द्रियो मे शक्ति विषयो के ग्रहण की,
तब तलक ही जमा कर लें सम्पदा धर्माचरण की ।।

तीन वणिक् धन लेकर निकले, करने को कोई व्यवसाय,
पहला लाभ कमाकर लौटा, दूजा लाया मूल बचाय।
तीजा मूल गँवाकर लौटा, इस उपमा पर करो विचार,
और समझ लो मन ही मन मे मर्म धर्म का भली प्रकार ।।

धर्म-चक्र-सूत्र

(अहिंसा)

अहिंसा सब आश्रमो का हृदय है,
अहिंसा शास्त्रोक्त पावन धर्म है।
सब व्रतो का सब गुणों का जगत् मे,
अहिंसा ही पिण्डरूपित मर्म है ।।

नही मेरु से ऊँचा कोई,
विस्तृत कोई नही गगन से।
कोई बढकर नही जगत् मे,
धर्म—अहिंसा के पालन से ।।

तत्थिमं पढमं ठाणं,
महावीरेण देसियं ।
अहिंसा निवुणा दिट्ठा,
सव्वभूएसु संजमो ।।

जीववहो अप्पवहो,
जीवदया अप्पणो दया होइ ।
ता सव्वजीवहिंसा,
परिचत्ता अत्तकामेहिं ।।

सव्वे जीवा वि इच्छंति,
जीविउं ण मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणिवहं घोरं,
णिग्गंथा वज्जयंति णं ।।

(संजमो)

एगओ विरइं कुज्जा,
एगअ य पवत्तणं ।
असंजमे नियत्तिं च,
संजमे च पवत्तणं ।।

सभी प्राणियो के प्रति अविचल संयम में,
निपुण अहिंसा के दर्शन कर।
महावीर स्वामी ने यह आदेश किया है—
सब धर्मों मे पहला स्थान अहिंसा का है॥

जीव–हनन ही आत्म-हनन है,
जीव–दया ही आत्म–दया है।
इसीलिए तो आत्मकाम पुरुषो ने हरदम,
सर्व-जीव-हिंसा का जग मे त्याग किया है॥

सभी जीव जीने के इच्छुक,
मरना कोई नही चाहता।
इस कारण, प्राणी की हिंसा घोर पाप है;
इसीलिए निर्ग्रन्थ सदा ही,
हिंसा का वर्जन करते है॥

(संयम)

एक ओर से करो निवर्तन,
एक ओर को करो प्रवर्तन।
करो असयम से निवृत्ति, तो
संयम मे नित करो प्रवर्तन॥

णाणेण य झाणेण य,
तवोबलेण य बला निरूभंति ।
इंदिय - विसय - कसाया,
धरिया तुरगा व रज्जूहिं ।।

जहा कुम्मे सअंगाई,
सए देहे समाहरे ।
एव पावाइं मेहावी,
अज्झप्पेण समाहरे ।।

उवसमेण हणे कोह,
माण मद्दवया जिणे ।
मायं चऽज्जवभावेण,
लोभं संतोसओ जिणे ।।

रागे दोसे य दो पावे,
पावकम्म — पवत्तणे ।
जे भिक्खू रुभई निच्चं,
से न अच्छइ मंडले ।।

करो तपोबल-ज्ञान-ध्यान से,
विषय-कषायो का विनियन्त्रण।
जैसे कुशल सारथी करता,
अश्वो की वल्गा का कर्षण॥

जैसे कच्छप निज अगो का,
कर लेता तन मे सहार।
वैसे मेधावी पापो का,
करता आत्मा से परिहार॥

सदा क्षमा से हनो क्रोध को,
मृदुता से जीतो तुम मान।
ऋजुता से जीतो माया को,
तोष लोभ का जयी निदान॥

राग-द्वेष है पाप-प्रवर्तक,
जो इनका निरोध कर पाता।
जग के विषय-कषाय-व्यूह से,
ऐसा भिक्षु मुक्त हो जाता॥

(तवो)

जत्थ कसायणिरोहो,
बंभं जिणपूजणं अणसणं च ।
सो सव्वो चेव तवो,
विसेसओ मुद्धलोयम्मि ।।

अणसणमूणोयरिया,
भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ ।
कायकिलेसो संलीणया,
य बज्झो तवो होइ ।।

पायच्छित्त विणओ,
वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं च विउस्सग्गो,
एसो अब्भिंतरो तवो ।।

नाणमयवायसहिओ,
सीलुज्जलिओ तवो मओ अग्गी ।
संसार-करण बीयं,
दहइ दवग्गी व तणरासिं ।।

(तप)

विषय-कषाय-निरोध और जिन-पूजन,
अनशन व्रत औ' ब्रह्मचर्य का पालन।
ये चारो ही तपश्चरण है, जिनका–
पालन करते मुग्धभाव से जनगण॥

अनशन, ऊणोदरिका औ' भिक्षाटन,
कायक्लेश, सलीनभाव, रसवर्जन।
ये षड्विध श्रुतविहित 'बाह्यतप' होते,
जिनके पालन से साधक होता पावन॥

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्यादिक,
स्वाध्याय, ध्यान, व्युत्सर्ग–कहे जाते हैं।
सद्धर्म-चक्र के चरम-सूत्र के क्रम मे,
ये षड्विध 'आभ्यतर तप' कहलाते है॥

ज्ञान-वायु से, शीलरूप समिधा से,
प्रज्वलित तपोमय अग्नि जला देता है–
ससार-करण के कर्मबीज को ऐसे,
अपनी ज्वालामय जिह्वाएँ फैलाकर,
दावानल पल मे भस्मसात् कर देता–
जगल मे सूखे तृण-समूह को जैसे॥

त जइ इच्छसि गंतुं,
तीरं भवसायरस्स घोरस्स ।
तो तव-संजम-भंडं,
सुविहिय ! गिण्हाहि तूरतो ।।

दस-धम्म-सुत्तं

उत्तमखम-मद्दव-ज्जव—
सच्च-सउच्च च संजम चेव ।
तव - चागम - किंचण्हं,
बम्ह इदि दसविहो धम्मो ।।

कोहेण जो ण तप्पदि,
सुर-णर- तिरिएहि कीरमाणे वि ।
उवसग्गे वि रउद्दे,
तस्स खमा णिम्मला होदि ।।

कुल—रूव—जादि—बुद्धिसु
तव-सुद-सीलेसु गोरवं किंचि ।
जो णवि कुव्वदि समणो
मद्दव - धम्मं हवे तस्य ।।

हे सुविहित ! यदि जाना चाहे,
घोर भवार्णव के उस पार।
तो तप-सयम-रूप पोत को,
बना शीघ्र अपना आधार॥

दशधर्म-सूत्र

क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य,
शौच और सयम, तप, त्याग।
आकिञ्चन्य, ब्रह्मचारित्व—
इन दशविध भावो का दूजा नाम धर्म है॥

सुर-नर-तिर्यञ्चो के द्वारा किया गया हो,
चाहे कितना ही भीषण उपसर्ग-विकार।
फिर भी नर का कभी क्रोध से तप्त न होना,
कहलाता है उत्तम क्षमा – धर्म का सार॥

उन्नत कुल, तप, रूप, जाति का,
शील, ज्ञान, श्रुत का अभिमान।
जिसे न होता—वही मार्दव—
धर्म-व्रती है श्रमण महान्॥

जो चिंतेइ ण वंकं
ण कुणदि वंकं ण जंपदे वंकं ।
ण य गोवदि णियदोसं
अज्जवधम्मो हवे तस्स ।।

पर - सतावय - कारण
वयणं मोत्तूण सपरहिदवयणं ।
जो वददि भिक्खु तुरियो
तस्स दु धम्मो हवे सच्चं ।।

विस्ससणिज्जो माया व
होइ पुज्जो गुरु व्व लोअस्स ।
सयणु व्व सच्चवाई
पुरिसो सव्वस्स होइ पिओ ।।

सम - संतोष - जलेणं
जो धोवदि तिव्वलोहमलपुंजं ।
भोयण-गिद्धि - विहीणो
तस्य सउच्चं हवे विमलं ।।

कुटिल विचार, कुटिल कर्मों से,
कुटिल वचन से रहना मुक्त।
अपने दोषो को न छिपाना,
यही आर्जव - ऋजुतायुक्त ॥

निज वचनो से कभी किसी को,
जो सन्ताप नही पहुचाता।
निज-पर-हितकर वचन उसी का,
जग मे उत्तम सत्य कहाता ॥

विश्वसनीय सदा माता - सा,
पूज्य लोक मे है गुरुजन - सा।
सत्य - परायण जन होता है,
प्यारा जग मे सदा स्वजन - सा ॥

समता औ' सन्तोषगुणो के पावन जल से,
तीव्र लोभ के मल-समूह को जो धोता है।
भोजन की लिप्सा से जिसका मन विमुक्त है,
उसके मन मे उत्तम शौचधर्म होता है ॥

वय - समिदि - कसायाणं
दंडाणं तह इंदियाणं पंचण्हं ।
धारण-पालण- णिग्गह-
चाय-जओ संजमो भणिओ ।।

विसय-कसाय-विणिग्गह
भावं काऊण भाण-सज्भाए ।
जो भावइ अप्पाणं
तस्स तवं होदि णियमेण ।।

जे य कत्ते पिए भोए
लद्धे विपिट्ठिकुव्वइ ।
साहीणे चयई भोए
से हु चाइ त्ति वुच्चई ।।

चत्त - पुत्त - कलत्तस्स
निव्वावारस्स भिक्खुणो ।
पियं ण विज्जई किंचि
अप्पियं पि ण विज्जए ।।

व्रतो, समितियो और कषायो,
दडो और इन्द्रियो का ही—
क्रमश धारण, पालन, निग्रह,
त्याग, विजय—उत्तम सयम है ।।

विषयो और कषायो के निग्रह से,
ध्यान और स्वाध्याय-नियम के द्वारा,
जो आत्मा को भावित कर लेता है,
उत्तम तप का धर्म उसी का धन है ।।

कान्त और प्रिय भोग-विषय मिलने पर,
जो कि पराङ् मुख स्वेच्छा से हो जाता,
तथा पूर्ण स्वाधीन भोग तजता है,
उत्तम त्याग धर्म उसका कहलाता ।।

जिसने पुत्र कलत्र-कर्म सब त्यागे,
जिसको प्रिय-अप्रिय का द्वन्द्व नही है ।
उस अनगार असग भिक्षु के मन मे,
उत्तम आकिञ्चन्य धर्म रहता है ।।

तेलोक्काड - विडहणो
कामाग्गी-विसय रुक्ख-पज्जलिओ ।
जोवण - तणिल्लचारी
जं ण डहइ सो हवइ धण्णो ।।

भोच्चा माणुस्सए भोए अप्पडिरूवे अहाउयं ।
पुव्वं विसुद्धसद्धम्मे केवलं बोहि वुज्झिया ।।
चउरंगं दुल्लह मत्ता संजमं पडिवज्जिया ।
तवसा धुयकम्मंसे सिद्धे हवइ सासए ।।

यौवन-तृण-दल पर विचरण मे चचल,
विषय-वृक्ष से ज्वलित हुआ कामानल,
सदा भस्म करता है त्रिभुवन-कानन ।
किन्तु जिसे यह पाता जला नही है,
उत्तम ब्रह्मचर्य का व्रती वही है,
उसी धन्य व्रतधारी का है वन्दन ॥

आयु अवधि मे मनुज भोगता जाने कितने अनुपम भोग,
पूर्वार्जित सद्धर्म-विभव से करता केवल-बोधि-सुयोग ॥
धर्मचक्र के अन्य चरण मे आत्म-नियम का कर सुविचार,
दुर्लभ जान चार अगो को सयम-व्रत करता स्वीकार ।
काट कर्म-कारा को तप से फिर कर लेता सिद्धि-समागम,
यही सिद्धपद शाश्वत होता है-ऐसा कहते जैनागम ॥

———

आचार-पर्व

अप्प-सुत्तं

अप्पा नई वेयरणी
अप्पा मे कूड-सामली।
अप्पा कामदुहा धेणु
अप्पा मे णंदणं वणं॥

अप्पा कत्ता विकत्ता य
दुक्खाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं य
दुप्पट्ठि सुपट्ठिओ॥

अप्पा चेव दमेयव्वो
अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दन्तो सुही होइ
अस्सि लोए परत्थ य॥

आत्म-सूत्र

आत्मा है वैतरणी सरिता,
आत्मा कामधेनु पावन है।
आत्मा कूट-शाल्मली तरु है,
आत्मा मेरा नन्दन-वन है॥

आत्मा कर्ता और विकर्ता,
दु ख और सुख का है जग मे।
आत्मा सन्मार्गी का सहचर,
और शत्रु है निन्दित मग मे॥

दमन करो अपने आत्मा का,
क्योकि यही तो कार्य कठिन है।
उभयलोक मे होता सुखमय,
आत्मदमी का ही जीवन है॥

जस्सेव–मप्पा उ हवेज्ज निच्छिग्रो
चइज्ज देहं ण हु धम्मसासणं ।
तं तारिसं णो पइलेन्ति इन्दिया
उवितवाया व सुदंसणं गिरिं ।।

अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो
सव्विन्दिएहिं सुसमाहिएहिं ।
अरक्खिग्रो जाइपहं उवेइ
सुरक्खिग्रो सव्वदुहाण मुच्चइ ।।

देह तजूं, पर धर्म न जाये,
जिसके आत्मा का निश्चय है।
उसे इन्द्रियाँ नही डिगाती,
ज्यो आँधी मे अडिग मलय है ।।

करे हम आत्मा की सतत रक्षा,
हमारी सब समाहित इन्द्रियो से।
अरक्षित आत्मा भव में भटकता,
सुरक्षित मुक्त हो जाता दुखों से ।।

———

वर मे अप्पा दन्तो
संजमेण तवेण य।
माऽहं परेहि दम्मन्तो
बन्धणेहि वहेहि य।।

जो सहस्सं सहस्साणं
संगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं
एस से परमो जओ।।

अप्पाणमेव जुज्झाहि
किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं
जइत्ता सुहमेहए।।

पंचिन्दियाणि कोहं
माणं मायं तहेव लोहं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं
सव्वमप्पे जिए जियं।।

दमन करे मेरे आत्मा का,
कोई वध से या बन्धन से।
इससे अच्छा सयम-तप से,
दमी बनूं मैं स्वय दमन से ।।

वीर अजय अरिदल-सहस्र को, ✓
समरभूमि में करता जय है।
वही एक आत्मा को जीते,
तो यह उसकी परम विजय है ।।

युद्ध करो अपने आत्मा से, ✓
बाह्य युद्ध से क्या होता है?
आत्मा से आत्मा का जेता,
जग मे सुखी सदा होता है ।।

पचेन्द्रियाँ, क्रोध औ' माया,
लोभ, मान—सब कुछ दुर्जय है।
पर सबसे दुर्जय है आत्मा,
आत्म-विजय ही सर्वविजय है ।।

काम-सुत्तं

सल्लं कामा विसं कामा
कामा आसीविसोवमा।
कामे य पत्थेमाणा
अकामा जन्ति दुग्गइं॥

सव्वं विलवियं गीयं
सव्वं नट्टं विडम्बियं।
सव्वे आभरणा भारा
सव्वे कामा दुहावहा॥

जहा किंपागफलाणं
परिणामो ण सुंदरो।
एवं भुत्ताण - भोगाणं
परिणामो ण सुंदरो॥

काम-सूत्र

काम शल्य है, काम जहर है,
काम भयकर सर्प-समान।
विषय–भोग के कामी दुर्गति
पाते हैं—यह निश्चय जान।।

सब सगीत विलापरूप हैं,
सारे नाट्य विडम्बन है।
सब आभूषरग भाररूप है,
काम दु.ख के भाजन है।।

जैसे है किंपाक फलो का,
रूप देखने भर को सुन्दर।
वैसे भुक्त सभी भोगो की,
परिणति कभी न होती सुखकर।।

खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा
पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा ।
संसार-मोक्खस्स विपक्ख - भूया
खाणी अणत्थाण उ काम भोगा ।।

मोक्खमग्ग-रयणत्तयसुत्तं

मग्गो मग्गफलं ति य
दुविह जिणसासणे समक्खादं ।
मग्गो खलु सम्मत्तं
मग्गफलं होइ णिव्वाणं ।।

दंसणणाण - चरित्ताणि
मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि ।
साधूहि इदं भणिदं
तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा ।।

णिच्छय-ववहार-सरूवं,
जो रयणत्तयं ण जाणइ सो ।
जे कीरइ तं मिच्छा—
रूवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं ।।

क्षण भर सुख, बहुकाल दुख है,
सुख है न्यून, अधिक दुख जान।
मोक्षमार्ग के शत्रु भयानक,
काम अनर्थों की है खान॥

मोक्षमार्ग—रत्नत्रयसूत्र

मार्ग–मार्गफल– दो तत्त्वो का,
जिनशासन में है आख्यान।
सम्यक्ता है मार्ग श्रेष्ठतम,
और मार्गफल है निर्वाण॥

मोक्षमार्ग है सम्यक् दर्शन,
सम्यक् ज्ञान और चारित्र।
बन्ध मोक्ष के लिए नियमत,
हो निश्चय-व्यवहार पवित्र॥

निश्चय औ' व्यवहाररूप,
रत्नत्रय से जो है अनजान।
'जिन' के मत मे उसके सारे,
कार्यों को मिथ्या ही मान॥

धम्मादीसद्दहणं,
सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं ।
चिट्ठा तवंसि चरिया,
ववहारो मोक्खमग्गो त्ति ।।

नादंसणिस्स नाणं,
नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो,
नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ।।

अप्पा अप्पम्मि रम्रो,
सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो ।
जाणइ तं सण्णाणं,
चरदिह चारित्तमग्गु त्ति ।।

सम्मत्त - रयणसारं,
मोक्ख-महारुक्ख-मूलमिदि भणियं ।
तं जाणिज्जइ णिच्छय—
ववहार - सरूवदो - भेयं ।।

धर्म आदि मे श्रद्धा है सम्यक् दर्शन,
ज्ञान अगपूर्वों का सम्यक् ज्ञान है।
तप निष्ठा मे वर्तन है सम्यक् चारित्र,
यही रत्न-त्रय सच्चा मोक्ष-विधान है ।।

सम्यक् दर्शन बिना न होता ज्ञान है।
बिना ज्ञान कैसा चारित्र्य-विधान है ?
बिन चारित्र्य मोक्ष कैसे मिल पायगा ?
मोक्ष बिना निर्वाण कहाँ से आयगा ??

आत्मा से आत्मा-रत होना
ही सम्यक् दर्शन कहलाता।
आत्म – ज्ञान – सज्ञानरूप है,
आत्म–चरण चारित्र्य कहाता ।।

सम्यक्–दर्शन सूत्र

मोक्ष-महातरु का महिमामय मूल है,
सम्यक् दर्शन, रत्नत्रय का सार है।
दो भेदो मे इसका रूप विभक्त है,
एक रूप 'निश्चय', दूजा 'व्यवहार' है ।।

जह सलिलेण ण लिप्पइ,
कमलिणीपत्तं सहावपयडीए ।
तह भावेण ण लिप्पइ,
कसाय - विषएहिं सप्पुरिसो ॥

सूई जहा ससुत्ता,
न नस्सई कयवरम्मि पडिग्रा वि ।
जीवो वि तह ससुत्तो,
न नस्सइ गग्रो वि ससारे ॥

जेण तच्चं विबुज्झेज्ज,
जेण चित्तं णिरुज्झदि ।
जेण ग्रत्ता विसुज्झेज्ज,
तं णाणं जिणसासणे ॥

सुबहुं पि सुयमहीयं,
किं काहिइ चरणविप्पहीणस्स ।
ग्रधस्स जह पलित्ता,
दीव–सय–सहस्स–कोडी वि ॥

जैसे शतदल सहज प्रकृति के कारण,
लिप्त नही होता है कभी सलिल से।
वैसे ही सम्यक्त्व – भाव से सज्जन,
लिप्त न होता कभी कषाय–कलिल से।।

सम्यक्-ज्ञान सूत्र

गिरने पर भी कभी न खोती,
ज्यो ससूत्र सूई आगन मे।
सूत्रयुक्त हो जीव अगर तो,
नष्ट नही होता जीवन मे।।

वही ज्ञान है जिन शासन मे,
जिससे होता तत्त्व – विबोध।
जिससे आत्मा का विशोध हो,
जिससे होता चित्त – निरोध।।

सम्यक्-चारित्र्य सूत्र

अन्धे के आगे जलती,
दीपावलि का क्या अर्थ है?
वैसे ही चारित्र्य-शून्य का,
श्रुत-अधीत सब व्यर्थ है।।

सद्धं नगरं किच्चा,
तवसंवर - मग्गलं।
खन्ति निउणपागारं,
तिगुत्तं दुप्पधंसयं ॥

×

तवनाराय - जुत्तेण,
भित्तूणं कम्मकंचुय।
मुणी विगयसंगामो,
भवाओ परिमुच्चए ॥

●

रयणत्तय-संजुत्तो,
जीवो वि हवेइ उत्तमं तित्थं।
संसारं तरइ जदो,
रयण-त्तय-दिव्व-णावाए ॥

श्रद्धा को इक नगर बनाओ।

तप-सवर को करो अर्गला,
और क्षमा को दृढ प्राकार,
तन-मन-वचन गुप्ति से उसको,
शत्रुगणो से सतत बचाओ।
श्रद्धा को इक नगर बनाओ।।

×

मुनि बनकर तुम कर्म-कवच को,
तप-रूपी बाणो से भेदो।
बधन काटो—समर जीत कर,
आत्मा को भवमुक्ति दिलाओ।।
श्रद्धा को इक नगर बनाओ।।

●

रत्न-त्रय—सम्पन्न जीव ही,
उत्तम 'तीर्थ' कहा जाता है।
वह त्रिरत्न की दिव्य तरी से,
भव-सागर को तर जाता है।।

अहिंसा सच्चं च अतेणगं च,
तत्तो य बम्भं अपरिग्गहं च ।
पडिवज्जिया पंच महाव्वयाणि,
चरिज्ज धम्म जिणदेसियं विदू ।।

सव्वेसिमासमाणं, हिदय—
गब्भो व सव्वसत्थाणं ।
सव्वेसिं वदगुणाणं,
पिंडो सारो अहिंसा हु ।।

जावन्ति लोए पाणा,
तसा अदुव थावरा ।
ते जाणमजाण वा,
ण हणे जो वि घायए ।।

पंच-महाव्रत सूत्र

अहिंसा, सत्य और अस्तेनक,
ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह–जान।
जिन प्रतिपादित पाँच महाव्रत,
पाले जीवनधर्म समान ।।

[अहिंसा सूत्र]

सभी आश्रमो का है हृदय अहिसा,
सभी शास्त्रो का है गर्भ अहिंसा।
सभी व्रताचरणो का सार अहिंसा,
सभी गुणो का अन्तिम मर्म अहिसा ।।

निखिल लोक मे
जितने त्रस–स्थावर प्राणी हैं,
जाने अथवा अनजाने मे उनकी हिंसा
न तो स्वयं करना, न किसी से भी करवाना,
—यही अहिंसा का पालन है ।।

सय तिवायए पाणे,
अदुवन्नेहिं घायए।
हणन्तं वाणुजाणाइ,
वेरं वड्ढइ अप्पणो ।।

जगनिस्सिएहिं भूएहिं,
तसनामेहिं थावरेहिं च।
णो तेसिमारभे दंडं,
मणसा वयसा कायसा चेव ।।

अज्झत्थं सव्वओ सव्वं,
दिस्स पाणे पियायए।
ण हणे पाणिणो पाणे,
भयवेराओ उवरए ।।

जो परिग्रही
स्वय किसी के प्राणो का व्यपरोपण करता,
अथवा किसी अन्य के हाथो करवाता है।
अथवा किसी हनन करने वाले का,
अनुमोदन करता है—वह तो जग मे,
अपने लिए वैर का ही संचय करता है ॥

त्रस अथवा स्थावर नामो से,
जग मे जितने भूतजात हैं।
मन से, वाणी से, शरीर से, किसी तरह भी,
उन पर दड–प्रयोग निन्द्य है, अकरणीय है ॥

अपने प्राण सभी को प्रिय है, इसे जानकर,
सकल विश्व के सब जीवो को,
अपने आत्मा के समान सप्राण मानकर।
भय से और वैर से उपरत सत्साधक को,
कभी किसी प्राणी के प्रिय प्राणो,
की हिंसा उचित नही है ॥

सव्वाहि अणुजुत्तीहिं,
मतिमं पडिलेहिया ।
सव्वे अक्कन्तदुक्खा य,
अओ सव्वे ण हिंसया ॥

संबुज्झमाणे उ णरे मइमं,
पावाउ अप्पाण निवट्टएज्जा ।
हिंसप्पसूआइ दुहाइं मत्ता,
वेरानुबन्धीणि महब्भयाणि ॥

समया सव्वभएसु,
सत्तु-मित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवाय विरई,
जावज्जीवाए दुक्करं ॥

एयं खु णाणिणो सारं,
ज न हिंसति किंचण ।
अहिंसासमयं चेव
एयावन्तं वियाणिया ॥

मतिमन्तो का कार्य यही है—
सभी युक्तियो के मथन से,
सम्यक् ज्ञान जगाकर मन मे,
सब जीवो को दुःखो से भयभीत मानकर,
कभी किसी प्राणी को जग मे नही सताये ॥

हिसा से जन्मे दुखो को,
वैर-विवर्धक महाभयकर दु.ख मानकर,
जो मतिमान् मनस्वी,
सम्यग्-बोध हृदय मे जाग्रत करता,
वही विश्व मे पापकर्म से अपना परित्राण करता है ॥

भले शत्रु हो या कि मित्र हो,
सब जीवो के प्रति समता का पालन करना,
और सर्वविध हिसा से,
आजीवन विरत आचरण रखना बहुत कठिन है ॥

किसी जीव की जग मे हिसा कभी न करना,
सकल-ज्ञान का सार यही है।
यही परम विज्ञान,
अहिंसा का पावन सिद्धान्त यही है ॥

अप्पणट्ठा परट्ठा वा,
कोहा वा जइ वा भया।
हिंसगं न मुसं बूया,
नो वि अन्नं वयावए ।।

गामे णयरे वा रण्णे,
वा पेच्छिऊण परमत्थं।
जो मुंचदि गहणभावं,
तिदियवदं होदि तस्सेव।

मूलमेअमहम्मस्स,
महादोस – समुस्सयं।
तम्हा मेहुण–संसग्गिं,
निग्गंथा वज्जयंति णं ।।

[सत्य सूत्र]

स्वय अपने वास्ते या दूसरो के वास्ते,
क्रोध – भय – वश या किसी कारण ।
कभी हिंसक झूठ खुद बोलो न बुलवाओ,
है यही तो सत्य व्रत का आचरण ।।

[अस्तेय-सूत्र]

ग्राम, नगर अथवा अरण्य मे,
किसी अभीष्ट वस्तु को लखकर ।
ग्रहण-भाव का परित्याग ही,
तीजा व्रत अस्तेय कहाता ।।

[ब्रह्मचर्य-सूत्र]

है अधर्म का मूल, और है,
महादोष का मलिन निकेतन ।
काम – सुरति का इसीलिए,
निर्ग्रन्थ किया करते है वर्जन ।।

अप्पडिकुट्ठं उवधिं,
अपत्थणिज्जं असंजदजणेहिं ।
मुच्छादिजणणरहिदं,
गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं ।।

संगनिमित्तं मारइ,
भणइ अलीअं करेइ चोरिक्कं ।
सेवइ मेहुण-मुच्छं,
अप्परिमाणं कुणइ जीवो ।।

जहा दुमस्स पुप्फेसु,
भमरो आवियई रसं ।
ण य पुप्फं किलामेइ,
सो य पीणेइ अप्पयं ।।

गंथच्चाओ इंदिय—
णिवारणे अंकुसो व हत्थिस्स ।
णयरस्स खाइया वि य,
इन्दियगुत्ती असंगत्तं ।।

जो ममत्व का भाव नही पैदा करती हो,
जो असंयमी लोगो द्वारा प्रार्थ्य नही है—
मात्र उसी अनिवार्य वस्तु का ग्रहण श्रेय है,
शेष अल्पतम का परिग्रह भी ग्राह्य नही है ।।

जीव परिग्रह का आकाक्षी बनकर हिंसाएँ करता है,
झूठ बोलता, चोरी करता, सुरत-भोग मे रत रहता है।
अन्धी ममता से ही उसके इद्रियगरण मूर्च्छित रहते हैं,
इन्ही पाच पापो की जड है, जिसको हम 'परिग्रह' कहते है ।।

जैसे सदय-भाव से भौरा करता फूलो से रसपान,
स्वय तृप्त भी होता, फूलो को भी नही बनाता म्लान।
वैसे ही श्रेयार्थी साधक नही जगत् को देता कष्ट,
अपरिग्रह से जीवन जीता और स्वय भी होता तुष्ट ।।

जैसे गज अंकुश से ही वश मे आता है,
जैसे नगर-सुरक्षा खाई से होती है,
वैसे ही इन्द्रिय-निग्रह के हित,
अपरिग्रह आवश्यक है।
अनासक्ति इन्द्रिय-गोपन है ।।

दो चेव जिणवरेहिं,
जाइ-जरा-मरण-विप्पमुक्केहिं ।
लोगम्मि पहा भणिया,
सुस्समण – सुसावगो वा वि ।।

दाणं पूया मुक्खं,
सावयधम्मे ण सावया तेण विणा ।
झाणाज्झयणं मुक्खं,
जइधम्मे तं विणा तहा सो वि ।।

संपत्तदंसणाई,
पइदियहं जइजणा सुणेई य ।
सामायारिं परमं,
जो खलु तं सावग बिंति ।।

इत्थी जूयं[1] मज्जं,
मिगव्व वयणे तहा फरुसया य ।
दंडफरुसत्तमत्थस्स,
दूसण सत्त वसणाइं ।।

जरा-मरण-भव-मुक्त जिनों ने,
किया द्विविध पथ का आदेश।
उत्तम श्रावक और श्रमण के,
धर्मों का करके निर्देश ।।

श्रावकत्व के लिए मुख्यत·
दान और पूजन प्रधान है।
और श्रमण का धर्म मुख्यत
शास्त्रो का अध्ययन-ध्यान है ।।

जो यतियो से प्रतिदिन सुनता,
सामाचारी परम ध्यान से।
वह सम्यग्-दर्शन-विशुद्ध-जन
'श्रावक' होता जिन-विधान से ।।

नारी, द्यूत, मद्य, मृगया, रति,
वाणी और दड की कटुता,
तथा अर्थ का दूषण मिलकर,
सात व्यसन जग मे कहलाते ।।

मज्जेण णरो अवसो,
कुणेइ कम्माणि णिदणिज्जाइं ।
इहलोए परलोए,
अणुहवइ अणतयं दुक्खं ।।

मांसासणेण वड्ढइ,
दप्पो दप्पेण मज्जमहिलसइ ।
जयं पि रमइ तो तं,
पि वण्णिए पाउणइ दोसे ।।

पाणिवह-मुसावाए,
अदत्त-परदार-नियमणेहिं च ।
अपरिमिइच्छाओऽवि य,
अणुव्वयाइं विरमणाइं ।।

वज्जिज्जा तेनाहड,
तक्करजोगं विरुद्धरज्जं च ।
कूड-तुल-कूडमाणं,
तप्पडिरूवं च ववहारं ।।

मद्य-पान से विवश हुआ नर,
निन्दित कर्मों को अपनाता।
और उभयलोको मे शापित,
सदा अनन्त दुख है पाता ।।

मांसाशन है दर्प बढाता,
दर्प मद्य की चाह जगाता,
वही द्यूत का व्यसन लगाता,
और मनुज दोषो का भाजन,
बनकर अपना जन्म गँवाता ।।

जीव-हनन से, मृषा वचन से,
अप्रदत्त, पर-दार गमन से,
अमित परिग्रह की इच्छा से,
विरति-भाव 'अणुव्रत' कहलाता ।।

चोरी से लाई चीजो का करना वर्जन,
कर-चोरी या तस्कर का करना न आचरण।
जाली तुला और मुद्राएँ नही बनाना।
राज्य-विरुद्ध कर्म को कभी नही अपनाना ।।

नाण-दंसण-संपण्णं,
संजमे य तवे रयं।
एवंगुण-समाउत्तं,
संजयं साहुमालवे ॥

निम्ममो निरहंकारो,
निस्संगो चत्तगोरवो।
समो य सव्वभूएसु,
तसेसु थावरेसु अ ॥

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू,
गिण्हाहि साहू-गुण मुंचऽसाहू।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं,
जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ॥

विवित्तसेज्जासण-जंतियाणं,
ओमाऽसणाणं दमिइंदियाणं।
न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं,
पराइओ वाहिरिवोसहेहिं ॥

ज्ञान-दृष्टि से जो समृद्ध है,
सयम-तप मे सदा निरत है।
वही साधु है, वही पूज्य है,
जो उत्तम गुण से मडित है ।।

जो निस्सग, त्यक्त-गौरव है,
जो निर्मम, निरहकारी है।
त्रस-स्थावर भूतो के प्रति,
समदर्शी-'श्रमण' नामधारी है ।।

साधु गुणो से कहलाता है, अगुणो से इसके विपरीत।
श्रमण गुणो को धारण करता, तजता है अगुणो की रीत।
जो आत्मा से ही आत्मा का करता है निष्ठित विज्ञान।
रागद्वेष मे जो मम रहता, वही पूज्य है श्रमण महान् ।।

जो विविक्त शय्या-आसन के सेवन मे रहता है नियमित,
जो स्वल्पाहारी है, जिसके इन्द्रियगण है दमित नियन्त्रित,
उसके विमल चित्त को कोई राग न दूषित कर पाता है।
जैसे औषधि को न कभी भी रोग पराजित कर पाता है ।।

ण वि मुंडियेण समणो,
ण ओंकारेण बंभणो।
ण मुणी रण्णवासेणं,
कुसचीरेण ण तावसो।।

समयाए समणो होइ,
बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण उ मुणी होइ,
तवेण होइ तावसो।।

केवल मुण्डित मस्तक से ही,
कोई श्रमण नही बन जाता।
केवल ओम् ओम् जपने से,
कोई ब्राह्मण नही कहाता।
केवल जगल में रहने से,
मुनि कोई कब है बन पाया ?
कुशा और चीवर धारण से,
तापस कोई कब कहलाया ??

समता-भाव बसाकर मन मे,
शमन करे, वह श्रमण कहाये।
ब्राह्मण वही कि जो तन-मन से,
ब्रह्मचर्य का नियम निभाये।
मोक्ष-मार्ग का मनन करे जो,
जग उसको ही मुनि कहता है।
तापस वही सदा निष्ठा से,
जो तप मे तत्पर रहता है॥

कम्मुणा बंभणो होइ,
कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ,
सुद्दो हवइ कम्मुणा ।।

माहण-सुत्तं

जो ण सज्जइ आगन्तुं,
पव्वयन्तो ण सोयई।
रमइ अज्जवयणम्मि,
तं वयं बूम माहणं ।।

जायरूवं जहामट्ठं,
निद्धन्त-मल-पावगं।
राग-दोस भयाईयं,
तं वयं बूम माहणं ।।

नही जन्म से, नही नाम से,
नही किसी के ये नाते है।
ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र सब,
कर्मों से जाने जाते हैं॥

ब्राह्मण–सूत्र

जो घर मे रहकर भी, स्वजनो
मे आसक्त नही हो पाये,
जो सन्यास ग्रहण करने पर
शोकमग्न मन को न बनाये।
आर्यजनो के श्रेष्ठ वचन-मणि,
जिसके कठहार रहते है,
जो हो गुण-वैभव का स्वामी
उसको हम ब्राह्मण कहते है॥

ज्वाला मे तपने पर निर्मल
सोना और निखर जाता है,
और कसौटी पर कसने पर
सच्चा कुन्दन कहलाता है।
ऐसे सच्चे सोने के गुण
जिसके अन्तस् मे रहते है,
राग–द्वेष–भय मुक्त रहे जो
उसको हम ब्राह्मण कहते है॥

दिव्व-माणुस-तेरिच्छं,
जो ण सेवइ मेहुणं ।
मणसा काय वक्केणं,
तं वयं बूम माहणं ।।

जहा पोम्मं जले जायं,
नोपलिप्पइ वारिणा ।
एव अलित्तं कामेहिं,
तं वय बूम माहण ।।

मतिमन्तो का कार्य यही है—
सभी युक्तियो के मथन से,
सम्यक् ज्ञान जगाकर मन मे,
सब जीवो को दुःखो से भयभीत मानकर,
कभी किसी प्राणी को जग मे नही सताये ।।

हिसा से जन्मे दुखो को,
वैर-विवर्धक महाभयकर दु'ख मानकर,
जो मतिमान् मनस्वी,
सम्यग्-बोध हृदय मे जाग्रत करता,
वही विश्व मे पापकर्म से अपना परित्राण करता है ।।

भले शत्रु हो या कि मित्र हो,
सब जीवो के प्रति समता का पालन करना,
और सर्वविध हिसा से,
आजीवन विरत आचरण रखना बहुत कठिन है ।।

किसी जीव की जग मे हिसा कभी न करना,
सकल-ज्ञान का सार यही है ।
यही परम विज्ञान,
अहिंसा का पावन सिद्धान्त यही है ।।

अप्पणट्ठा परट्ठा वा,
कोहा वा जइ वा भया।
हिंसगं न मुसं बूया,
नो वि अन्नं वयावए॥

गामे णयरे वा रण्णे,
वा पेच्छिऊण परमत्थं।
जो मुंचदि गहणभावं,
तिदियवदं होदि तस्सेव।

मूलमेअमहम्मस्स,
महादोस – समुस्सयं।
तम्हा मेहुण–संसग्गि,
निग्गंथा वज्जयंति णं॥

[सत्य सूत्र]

स्वय अपने वास्ते या दूसरो के वास्ते,
क्रोध – भय – वश या किसी कारण।
कभी हिंसक झूठ खुद बोलो न बुलवाओ,
है यही तो सत्य व्रत का आचरण ।।

[अस्तेय-सूत्र]

ग्राम, नगर अथवा अरण्य मे,
किसी अभीष्ट वस्तु को लखकर।
ग्रहण-भाव का परित्याग ही,
तीजा व्रत अस्तेय कहाता ।।

[ब्रह्मचर्य-सूत्र]

है अधर्म का मूल, और है,
महादोष का मलिन निकेतन।
काम – सुरति का इसीलिए,
निर्ग्रन्थ किया करते है वर्जन ।।

अप्पडिकुट्ठं उवधिं,
अप्पत्थणिज्जं असंजदजणेहिं ।
मुच्छादिजणणरहिद,
गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं ।।

संगनिमित्तं मारइ.
भणइ अलीअं करेइ चोरिक्कं ।
सेवइ मेहुण-मुच्छं,
अप्परिमाणं कुणइ जीवो ।।

जहा दुमस्स पुप्फेसु,
भमरो आवियई रसं ।
ण य पुप्फं किलामेइ,
सो य पीणेइ अप्पयं ।।

गंथच्चाओ इंदिय—
णिवारणे अंकुसो व हत्थिस्स ।
णयरस्स खाइया वि य,
इन्दियगुत्ती असंगत्तं ।।

जो ममत्व का भाव नही पैदा करती हो,
जो असयमी लोगो द्वारा प्रार्थ्य नही है—
मात्र उसी अनिवार्य वस्तु का ग्रहण श्रेय है,
शेष अल्पतम का परिग्रह भी ग्राह्य नही है ।।

जीव परिग्रह का आकाक्षी बनकर हिंसाएँ करता है,
झूठ बोलता, चोरी करता, सुरत-भोग मे रत रहता है ।
अन्धी ममता से ही उसके इद्रियगण मूर्च्छित रहते हैं,
इन्ही पाच पापो की जड है, जिसको हम 'परिग्रह' कहते है ।।

जैसे सदय-भाव से भौरा करता फूलो से रसपान,
स्वय तृप्त भी होता, फूलो को भी नही बनाता म्लान ।
वैसे ही श्रेयार्थी साधक नही जगत् को देता कष्ट,
अपरिग्रह से जीवन जीता और स्वय भी होता तुष्ट ।।

जैसे गज अंकुश से ही वश मे आता है,
जैसे नगर-सुरक्षा खाई से होती है,
वैसे ही इन्द्रिय-निग्रह के हित,
अपरिग्रह आवश्यक है ।
अनासक्ति इन्द्रिय-गोपन है ।।

दो चेव जिणवरेहिं,
जाइ-जरा-मरण-विप्पमुक्केहिं ।
लोगम्मि पहा भणिया,
सुस्समण – सुसावगो वा वि ।।

दाणं पूया मुक्खं,
सावयधम्मे ण सावया तेण विणा ।
झाणाज्झयणं मुक्खं,
जइधम्मे तं विणा तहा सो वि ।।

संपत्तदंसणाई,
पइदियहं जइजणा सुणेई य ।
सामायारिं परमं,
जो खलु तं सावग बिंति ।।

इत्थी जूयं मज्जं,
मिगव्व वयणे तहा फरुसया य ।
दंडफरुसत्तमत्थस्स,
दूसणं सत्त वसणाइं ।।

जरा-मरण-भव-मुक्त जिनो ने,
किया द्विविध पथ का आदेश।
उत्तम श्रावक और श्रमण के,
धर्मों का करके निर्देश ।।

श्रावकत्व के लिए मुख्यत·
दान और पूजन प्रधान है।
और श्रमण का धर्म मुख्यत
शास्त्रो का अध्ययन-ध्यान है ।।

जो यतियो से प्रतिदिन सुनता,
सामाचारी परम ध्यान से।
वह सम्यग्-दर्शन-विशुद्ध-जन
'श्रावक' होता जिन-विधान से ।।

नारी, द्यूत, मद्य, मृगया, रति,
वाणी और दड की कटुता,
तथा अर्थ का दूषण मिलकर,
सात व्यसन जग मे कहलाते ।।

मज्जेण णरो अवसो,
कुणेइ कम्माणि णिंदणिज्जाइं ।
इहलोए परलोए,
अणुहवइ अणंतयं दुक्खं ॥

मांसासणेण वड्ढइ,
दप्पो दप्पेण मज्जमहिलसइ ।
जयं पि रमइ तो तं,
पि वण्णिए पाउणइ दोसे ॥

पाणिवह–मुसावाए,
अदत्त-परदार-नियमणेहिं च ।
अपरिमिइच्छाओऽवि य,
अणुव्वयाइं विरमणाइं ॥

वज्जिज्जा तेनाहड,
तक्करजोगं विरुद्धरज्जं च ।
कूड-तुल–कूडमाणं,
तप्पडिरूवं च ववहारं ॥

मद्य-पान से विवश हुआ नर,
निन्दित कर्मों को अपनाता।
और उभयलोको मे शापित,
सदा अनन्त दुख है पाता।।

मासाशन है दर्प बढाता,
दर्प मद्य की चाह जगाता,
वही द्यूत का व्यसन लगाता,
और मनुज दोषो का भाजन,
बनकर अपना जन्म गँवाता।।

जीव-हनन से, मृषा वचन से,
अप्रदत्त, पर-दार गमन से,
अमित परिग्रह की इच्छा से,
विरति-भाव 'अणुव्रत' कहलाता।।

चोरी से लाई चीजो का करना वर्जन,
कर-चोरी या तस्कर का करना न आचरण।
जाली तुला और मुद्राएँ नही बनाना।
राज्य-विरुद्ध कर्म को कभी नही अपनाना।।

नाण-दंसण-संपण्णं,
संजमे य तवे रयं ।
एवंगुण-समाउत्तं,
संजयं साहुमालवे ।।

निम्ममो निरहंकारो,
निस्संगो चत्तगोरवो ।
समो य सव्वभूएसु.
तसेसु थावरेसु अ ।।

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू,
गिण्हाहि साहू-गुण मुंचऽसाहू ।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं,
जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ।।

विवित्तसेज्जासण-जंतियाणं,
ओमाऽसणाणं दमिइंदियाणं ।
न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं,
पराइओ वाहिरिवोसहेहिं ।।

ज्ञान-दृष्टि से जो समृद्ध है,
सयम-तप मे सदा निरत है।
वही साधु है, वही पूज्य है,
जो उत्तम गुण से मडित है।।

जो निस्सग, त्यक्त-गौरव है,
जो निर्मम, निरहंकारी है।
त्रस-स्थावर भूतो के प्रति,
समदर्शी-'श्रमण' नामधारी है।।

साधु गुणो से कहलाता है, अगुणो से इसके विपरीत।
श्रमण गुणो को धारण करता, तजता है अगुणो की रीत।
जो आत्मा से ही आत्मा का करता है निष्ठित विज्ञान।
रागद्वेष मे जो सम रहता, वही पूज्य है श्रमण महान्।।

जो विवित्त शय्या-आसन के सेवन मे रहता है नियमित,
जो स्वल्पाहारी है, जिसके इन्द्रियगण है दमित नियन्त्रित,
उसके विमल चित्त को कोई राग न दूषित कर पाता है।
जैसे औषधि को न कभी भी रोग पराजित कर पाता है।।

ण वि मुंडियेण समणो,
ण ओकारेण बंभणो।
ण मुणी रण्णवासेणं,
कुसचीरेण ण तावसो॥

समयाए समणो होइ,
बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण उ मुणी होइ,
तवेण होइ तावसो॥

केवल मुण्डित मस्तक से ही,
कोई श्रमण नही बन जाता।
केवल ओम् ओम् जपने से,
कोई ब्राह्मण नही कहाता।
केवल जगल मे रहने से,
मुनि कोई कब है बन पाया ?
कुशा और चीवर धारण से,
तापस कोई कब कहलाया ??

समता-भाव बसाकर मन मे,
शमन करे, वह श्रमण कहाये।
ब्राह्मण वही कि जो तन-मन से,
ब्रह्मचर्य का नियम निभाये।
मोक्ष-मार्ग का मनन करे जो,
जग उसको ही मुनि कहता है।
तापस वही सदा निष्ठा से,
जो तप मे तत्पर रहता है॥

कम्मुणा बंभणो होइ,
कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ,
सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

माहण-सुत्तं

जो ण सज्जइ आगन्तुं,
पव्वयन्तो ण सोयई।
रमइ अज्जवयणम्मि,
तं वयं बूम माहणं॥

जायरूवं जहामट्ठं,
निद्धन्त-मल-पावगं।
राग-दोस भयाईयं,
तं वयं बूम माहणं॥

नही जन्म से, नही नाम से,
नही किसी के ये नाते हैं।
ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र सब,
कर्मों से जाने जाते हैं।।

ब्राह्मण–सूत्र

जो घर मे रहकर भी, स्वजनो
मे आसक्त नही हो पाये,
जो सन्यास ग्रहण करने पर
शोकमग्न मन को न बनाये।
आर्यजनो के श्रेष्ठ वचन-मणि,
जिसके कठहार रहते है,
जो हो गुण-वैभव का स्वामी
उसको हम ब्राह्मण कहते है।।

ज्वाला मे तपने पर निर्मल
सोना और निखर जाता है,
और कसौटी पर कसने पर
सच्चा कुन्दन कहलाता है।
ऐसे सच्चे सोने के गुण
जिसके अन्तस् मे रहते है,
राग–द्वेष–भय मुक्त रहे जो
उसको हम ब्राह्मण कहते है।।

दिव्व–माणुस–तेरिच्छं,
जो ण सेवइ मेहुणं ।
मणसा काय वक्केणं,
तं वयं बूम माहणं ।।

जहा पोम्मं जले जाय,
नोपलिप्पइ वारिणा ।
एव अलित्तं कामेहिं,
तं वय बूम माहण ।।

दिव्य, मानुषी या कि पाशवी,
काम-वासना से बचता है।
किसी रूप में भी जो मानव,
सुरताचरण नही करता है।
काम-पक से जिसके तन-मन-
वचन सदैव बचे रहते है।
निष्कलंक जिसका चरित्र है,
उसको हम ब्राह्मण कहते है॥

जल मे कमल जन्म लेता, पर
जल से लिप्त नही होता है,
विषयो के मल से योगी का,
मन आसक्त नही होता है।
जिसके तन-मन-वचन वासनाओ
से अनासक्त रहते हैं,
जो निर्लिप्त रहे शतदल-सा
उसको हम ब्राह्मण कहते हैं॥

तवस्सियं किसं दन्त,
अवचिय-मंस-सोणियं।
सुव्वयं पत्त-निव्वाणं,
त वयं बूम माहणं॥

तसपाणे वियाणेत्ता,
संगहेण य थावरे।
जो ण हिंसइ तिविहेणं,
तं वयं बूम माहणं॥

तप की वेदी पर जो तन का
रक्त-मास अर्पित कर आये, ✓
कठिन साधना के पथ चलकर
जो खुद को कृशकाय बनाये।
ऐसा व्रती, कि जिसके वश मे
सारे इन्द्रियगरण रहते हैं,
जो निर्वाण-प्राप्त तापस है
उसको हम ब्राह्मण कहते हैं॥

जो स्थावर-जगम जीवो का,
ज्ञान हृदय मे करता धारण।
जो मन वचन और काया से,
कभी न करता हिंस्र आचरण।
त्रिविध रूप हिंसा–प्रवृत्ति के,
जिससे सदा दूर रहते हैं,
जो न कभी हिंसा करता है,
उसको हम ब्राह्मण कहते है॥

कोहा वा जइ वा हासा,

लोहा वा जइ वा भया ।

मुसं न वयई जो उ,

त वयं बूम माहणं ।।

जहित्ता पुव्वसंजोगं,

नाइसंगे य बंधवे ।

जो ण सज्जइ भोगेसु,

तं वयं बूम माहणं ।।

कभी क्रोध के वश में आकर
वाणी का सयम न तोडता,
या कि कभी परिहास-वचन को
भी मिथ्या से नही जोडता।
जिसके सच्चे वचन, लोभ
या भय से अनभिभूत रहते हैं,
मृषा—वचन जो नही बोलता,
उसको हम ब्राह्मण कहते है ।।

जाति—वन्धु स्वजनो से जिसका,
मन ससर्ग-रहित रहता है,
जो माया-ममता के कारक,
सूत्रो का वर्जन करता है।
भुक्तोज्झित भोगो मे जिसके,
भाव असज्जित ही रहते है,
जो निर्लिप्त विषय-त्यागी है,
उसको हम ब्राह्मण कहते है ।।

अलोलुयं मुहाजीविं,
अणगार अकिंचणं।
असंसत्तं गिहत्थेसु,
तं वयं बूम माहणं॥

किं काहदि वणवासो,
कायकलेसो विचित्त उववासो।
अज्झयणमोणपहुदी,
समदारहियस्स समणस्स॥

'साँसे हैं, तब तक जीना है',
जिसका यह जीवन-दर्शन है।
जो अनगार, स्वय मे केन्द्रित,
निर्लोलुप है, निष्किञ्चन है।।
जिसके भाव सदा घर-बारी
जन से अनासक्त रहते है।
जो भव-त्यागी साधु पुरुष है,
उसको हम 'माहण' कहते है।।

चाहे दे ले कष्ट देह को,
या कर ले वनवास।
मौन धरे, अध्ययन करे,
या रखे विविध उपवास।।
जब तक समता-भाव नही है,
इनका क्या है अर्थ ?
समता-रहित श्रमण का सारा,
नियम - धर्म है व्यर्थ।।

संथार-सेज्जासणभत्तपाणे,
अप्पिच्छया अइलाभे वि संते ।
एवम्मपाणमभितोसएज्जा,
संतोसपाहन्नरए स पुज्जो ।।

कोहो य माणो य अणिग्गहीया,
माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया,
सिंचन्ति मूलाइं पुणब्भवस्स ।।

विरया परिग्गहाओ अपरिमिआओ अणंततण्हाओ,
वहुदोस-संकुलाओ नरयगइगमण-पंथाओ ।
खित्ताइ-हिरण्णाई धणाइ दुपयाइ कुवियगस्स तहा,
सम्मं विसुद्धचित्तो न पमाणाइक्कमं कुज्जा ।।

सुवण्ण-रूप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ।।

समाज-धर्म-सूत्र

सुख–शय्या, आवास और आसन, भोजन, जल–
तनिक चाहने पर भी यदि मिल जायँ विपुल,
फिर भी जो करता न अधिक का कभी ग्रहण
वह सन्तोषी है समाज का सदा पूज्यजन ।।

काले चार कषाय – असयत
क्रोध, लोभ, माया, अभिमान ।
पुनर्जन्म – तरु के सिचन को
ये है कुत्सित नीर समान ।।

अमित परिग्रह है अनत तृष्णा का कारण,
दोषो का है कोष, नरकगति का है वाहन ।
इसीलिए गृह-स्वर्ण - रजत-पशु-भडारण से,
सदा बचे श्रावक प्रमाण के अतिक्रमण से ।।

अनगिनती कैलास – सदृश उत्तु ग विशाल,
सोने – चाँदी के बन जाएँ शैल महान ।
फिर भी लोभी का मन उनसे नही भरेगा,
लोभी की इच्छा अनन्त है व्योम-समान ।।

जे पावकम्मे हि धणं मणुस्सा,
समाययन्ति अमयं गहाय।
पहाय ते पासपयट्टिये नरे,
वेराणुबद्धा नरयं उवेन्ति ॥

वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते,
इमम्मि लोए अदुवा परत्था।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे,
नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव ॥

जो जन अमृत समझकर धन का
पाप-कर्म से सचय करते।
छल – चोरी – मिथ्या – भाषण से,
अपनी सिर्फ तिजोरी भरते।
उनके पाप उन्ही की बेडी
बन, समाज से वैर बढाते।
धन रह जाता, पर वे जीवन
मे ही नारकीय गति पाते।।

पाप-कर्म से धन-सचय कर,
नर दुःखो से त्राण न पाता,
किसी लोक मे भी पहुँचे,
पर उसका पाप उसी को खाता।
जैसे दीपक बुझ जाने पर,
भवन अँधेरे मे खोता है,
वैसे नर विवेक को खोकर,
नेत्रसहित अन्धा होता है।।

संनिहिं च न कुवेज्जा,
लेवमायाए संजए।
पक्खी पत्तं समादाय,
निरवेक्खो परिव्वए।।

पाणिवह–मुसावाया,
अदत्त–मेहुण–परिग्गहा विरओ।
राई-भोयण-विरओ,
जीवो भवइ अणासवो।।

एगमेगे खलु जीवे,
अई अद्धाए असई उच्चागोए।
असई नीचागोए,
नो हीणे नो अइरित्ते–इतिसंखाए
के गोयावाई ? के माणावाई ??

चउहिं ठाणेहिं जीवा,
णेरतियत्ताए कम्मं पकरेंति तं जहा।
महारंभताते महापरिग्गहयाते,
पंचिंदियवहेण कुणिमाहारेण।।

उदरपूर्ति के लिए सदा निस्सग भाव से,
जैसे पक्षी घास–पात का चुग्गा लाता।
वैसे ही निर्लेप सयमीजन समाज मे,
सग्रह के पापो से खुद को सदा बचाता ।।

जीव - हनन से, मृषावचन से,
अप्रदत्त से, रति–मैथुन से।
परिग्रहो से, निशिभोजन से,
जो भी जीव विरत हो जाता—
वही अनास्रव है बन पाता ।।

कितनी बार जीव धरती पर अपने क्रम से,
उच्च-नीच गोत्रो मे जन्म लिया करता है—
इसका जिसे ज्ञान है—उसकी शुद्ध दृष्टि मे,
कौन हीन है—कौन उच्च है ?
कब वह ऐसे भेदभाव को मन मे स्थान दिया करता है ?

चार कारणो से नर नरकलोक मे जाते—
महारम्भ से, महा–परिग्रह के साधन से,
पचेन्द्रिय जीवो के प्राण–व्यपरोपण से,
चौथे, मानुष होकर आमिष के भक्षण से ।।

पाओसणाणादिसु णत्थि मोक्खो,
खारस्स लोणस्स अणासएण।
ते मज्ज-मंसं लसुणं च भोच्चा,
अनत्थवासं परिकप्पयंति ।।

पाणे य नाइवाएज्जा,
अदिन्नं पि य नायए।
साइयं न मुसं बूया,
एस धम्मो वुसीमओ ।।

देहादिसंगरहिओ,
माण-कसाएहिं सयलपरिचत्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ,
स भावलिंगी हवे साहू ।।

खामणा सुत्तं

सव्वस्स जीवरासिस्स,
भावओ धम्मनिहिअनिअचित्तो।
सव्वे खमावइत्ता,
खमामि सव्वस्स अहयं पि ।।

चाहे त्याग करे लवणादिक, चाहे करले स्नान,
कुछ भी करे, रहेगे हरदम वे अनर्थ की खान।
मद्य-मांस-लहसुन-भक्षण को जिनको पडी कुटेव,
उनको मोक्ष न मिल पाएगा जग मे निश्चयमेव ।।

कभी किसी के प्राणों का अतिपात न करना,
अप्रदत्त चीजो का भी आदान न करना।
कभी कपट से युक्त और मिथ्या न बोलना,
आत्मनिग्रही सत्पुरुषो का यही धर्म है ।।

जो देहादि सग से विरहित,
मान–कषायो से है मुक्त।
आत्माराम भावलिंगी वह,
श्रमण साधुता से है युक्त ।।

क्षामणा–सूत्र

धर्मनिहित मन से, मैं जग के सब जीवो से,
करता हू निज अपराधो की क्षमा–याचना।
और क्षमा करता हू सबके अपराधो को,
शान्तिमयी है शुद्ध हृदय की यही क्षामणा ।।

सव्वस्स समणसंघस्स,
भगवओ अंजलिं करिअ सीसे।
सव्वे खमावइत्ता,
खमामि सव्वस्स अहयं पि॥

आयरिए उवज्झाए,
सीसे साहम्मिए कुलगणे य।
जे मे केइ कसाया,
सव्वे तिविहेण खामेमि॥

खामेमि सव्वे जीवा,
सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु,
वेरं मज्झं ण केणइ॥

जं जं मणेण बद्धं,
जं जं वायाए भासियं पावं।
जं जं काएण कयं,
मिच्छा मि दुक्कडं तस्स॥

पूजनीय प्रभु श्रमरण-संघ को हाथ जोड़कर,
शीश झुकाकर करता हू मैं क्षमा-प्रार्थना।
सबसे क्षमा माँगकर, करता क्षमा सभी को,
उभयमयी है शुद्ध हृदय की यही क्षामरणा ॥

पूजनीय आचार्यों और उपाध्यायो के,
उनके शिष्यो, सहधर्मीजन और
कुलगरणो के प्रति, जो मेरे कषाय है,
जो कुछ भी मेरे दुष्कृत हैं,
आज उन्ही की उन सबसे ही
तन से, मन से और वचन से
करता हू मैं क्षमा – याचना ॥

क्षमादान करता हूं मैं सारे जीवों को,
वे सब मेरे अपराधो को क्षमादान दे।
प्राणिमात्र से मैत्री मेरा परम धर्म है,
किसी जीव से वैर नही है मेरे मन मे ॥

जो जो पाप उठे है मन मे,
मुख ने जो दुर्वचन सुनाये।
जो जो दुष्कृत किये देह ने,
वह सब कुछ मिथ्या हो जाये ॥

जइ किंचि पमाएणं,
न सुट्ठु मे वट्टियं भए पुव्वि ।
तं मे खामेमि अहं,
निस्सल्लो निक्कसाओ अ ।।

अगर आपके प्रति मैंने किञ्चित् प्रमाद-वश,
नही किया हो उचित आचरण कभी कही पर।
तो नि:शल्य कषायरहित हों शुद्धभाव से,
क्षमा-याचना करता हू मैं आज आपसे ॥

चिन्तन–पर्व

तच्चत्थ-सुत्तं

हा ! जह मोहियमइणा,
सुग्गइमग्गं अजाणमाणेणं ।
भीमे भवकंतारे,
सुचिरं भमियं भयंकरम्मि ।।

वाहि–जर–मरण–मयरो,
निरंतरुप्पत्ति–नीर–निकुरंबो ।
परिणाम–दारुणदुहो,
अहो दुरतो भवसमुद्दो ।।

सरीरमाहु नाव त्ति,
जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो,
जं तरन्ति महेसिणो ।।

तत्त्वार्थ-सूत्र

हन्त ! सुगति-पथ से अनभिज्ञ,
अब तक मूढ-भाव-आक्रान्त ।
भीम भयकर भवारण्य मे,
रहा भटकता होकर भ्रान्त ॥

जरा-मरण-व्याधि-स्वरूप है मकर जहाँ पर,
जहाँ निरंतर जन्म-रूप पानी अनन्त है ।
केवल दारुण-दुःख सदा परिणति है जिसकी,
ऐसा यह भवसागर भीषण है, दुरन्त है ॥

भव सागर है, देह नाव है,
और जीव नाविक कहलाते ।
इस दुस्तर सागर को ऋषिवर,
तत्त्व-ज्ञान द्वारा तर जाते ॥

लोगो अकिट्टिमो खलु,
अणाइणिहणो सहाव-णिव्वत्तो ।
जीवाजीवहिं फुडो,
सव्वागासावयवो णिच्चो ।।

जीवाऽजीवा य बंधो य,
पुण्ण पावाऽऽसवो तहा ।
संवरो निज्जरा मोक्खो,
संतेए तहिया नव ।।

उत्तमगुणाण धामं,
सव्व-दव्वाण उत्तमं दव्वं ।
तच्चाण परं तच्चं,
जीवं जाणेह णिच्छयदो ।।

सुह-दुक्खजाणणा वा,
हिद-परियम्मं च अहिदभीरुत्तं ।
जस्स ण विज्जदि णिच्चं,
तं समणा विंति अज्जीवं ।।

लोक अकृत्रिम है, स्वभाव-निर्मित है,
और अनादि-निधन है।
सर्वाकाश-भाग है, जीवाजीव-व्याप्त है,
नित्य - सृजन है॥

जीव, अजीव, आस्रव, बंध,
पाप, पुण्य, सवर - तथ्यार्थ।
तथा निर्जरा, मोक्ष-जैनमत,
में ये नौ होते तत्त्वार्थ॥

उत्तम गुण का धाम जीव है,
सब द्रव्यो मे वह उत्तम है।
निश्चयत. यह जानो मन मे,
वह तत्त्वो का तत्त्व परम है॥

हित के प्रति व्यवसाय न जिसमे,
औ' सुख-दुख का ज्ञान नही है।
वह अजीव है, जिसे अहित के
लिए भीति का भान नही है॥

धम्मो अहम्मो आगासं,
  कालो पुग्गल जन्तवो ।
एस लोगो त्ति पण्णत्तो,
  जिणेहिं वरदंसिहिं ।।

आगासकालजीवा,
  धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा ।
मुत्तं पुग्गलदव्वं,
  जीवो खलु चेतणो तेसु ।।

वण्ण-रस-गंध-फासे,
  पूरण-गलणाइ सव्वकालम्हि ।
खंद इव कुणमाणा,
  परमाणु पुग्गला तम्हा ।।

ण य गच्छदि धम्मत्थी,
  गमणं ण करेदि अन्नदवियस्स ।
हवदि गती स प्पसरो,
  जीवाणं पुग्गलाणं च ।।

पुद्गल, धर्म, अधर्म और–
आकाश, काल–ये द्रव्य अजीव।
जिनमत मे षड्-द्रव्य लोक का,
छठा तत्त्व होता है जीव।।

पुद्गल द्रव्य मूर्तिक, बाकी,
पाँचो द्रव्य अमूर्तिक होते।
चेतन केवल जीव द्रव्य है,
शेष अजीव अचेतन होते।।

स्कन्ध और परमाणु रूप जो,
पूरण-गलन क्रिया से युत है।
वह 'पुद्गल' है – सर्वकाल मे,
स्पर्श-रूप-रस-गन्धान्वित है।।

जो न गमन करता, न कराता,
गति का जो है तटस्थ कारण।
पुद्गल जीवो की गामकता,
है 'धर्मास्तिकाय' का लक्षण।।

अक्खाणि बहिरप्पा,
अंतरप्पा हु अप्पसकप्पो।
कम्म-कलंक-विमुक्को,
परमप्पा भण्णए देवो ॥

आरुहवि अंतरप्पा,
बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा,
उवइट्ठं जिण-वरिंदेहिं ॥

रागा य दोसो वि य कम्मवीयं,
कम्मं च मोह-प्पभवं वयंति।
कम्मं च जाईमरणस्स मूलं,
दुक्खं च जाईमरणं वयंति ॥

णाणस्सावरणिज्जं दंसणावरणं तहा,
वेयणिज्जं तहा मोहं आउकम्मं तहेव य।
नामकम्म च गोयं च अतरायं तहेव य,
एवमेयाइं कम्माइं अट्ठेव उ समासओ ॥

वहिरात्मा कहते है अक्षगणो को,
और आत्म-संकल्प अन्तरात्मा है ।
आत्म-साधना-साध्य, कर्म-पंको से,
निष्कलंक निर्वन्धित परमात्मा है ॥

जिन-वचनो के रत्नो का सचय करके तुम,
मन से, वचन-काय से त्यागो बहिरात्मा को ।
और अन्तरात्मा मे सम्यक् आरोहण कर,
शुद्ध-भाव होकर फिर ध्याओ परमात्मा को ॥

राग-द्वेष है वीज कर्म के,
मोह कर्म का प्रभव कहाता ।
जन्म-मरण का मूल कर्म है,
भव-वधन है दुख-प्रदाता ॥

ज्ञान-दर्शनावरण-द्विविध हैं,
वेदनीय है, मोहनीय है ।
आयु, नाम गोत्रान्तराय—ये
आठ कर्म उल्लेखनीय है ॥

जह हवदि धम्मदव्वं,
तह तं जाणेह दव्वमधम्मक्खं
ठिदि-किरया-जुत्ताणं
कारणभूद तु पुढवीव ॥

चेयणरहियममुत्तं,
अवगाहण-लक्खणं च सव्वगयं ।
लोयालोय-विभेयं,
तं णहदव्वं जिणुद्दिट्ठं ॥

पास-रस-गंध-वण्ण-
व्वदिरित्तो अगुरुलहुग-संजुत्तो ।
वत्तण-लक्खण-कलियं,
कालसरूवं इमं होदि ॥

पाणेहिं चदुहिं जीवदि,
जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं ।
सो जीवो पाणा पुण,
बलमिंदियमाउ उस्सासो ॥

धर्म-द्रव्य-सी ही तटस्थता,
है 'अधर्म' का तात्त्विक लक्षण ।
पृथ्वी-सम ही जीव, पुद्गलो की
स्थिति मे जो बनता कारण ।।

है 'आकाश' अचेतन, व्यापक,
अवगाहन-लक्षण अमूर्त है ।
लोक-अलोक भेद से ही वह,
द्विविध जिनागम मे वर्णित है ।।

स्पर्श-रूप-रस-गध-रहित है,
अगुरु-लघुक-गुण से मडित है ।
वर्तन-लक्षण-कलित द्रव्य जो,
वही 'काल' पद से भाषित है ।।

बल-इन्द्रिय-उच्छ्वास-आयु-मय,
प्राणो से चिति पाता है ।
जो जीता है, जिया, जियेगा,
वही 'जीव' कहलाता है ।।

उवओग-लक्खणमणाइ-
निहण-मत्थंतर सरीराओ।
जीवमरूविं कारिं,
भोयं च सयस्स कम्मस्स।।

पुढवि-जल-तेय-वाऊ,
वणफ्फदी विविह-थावरेइंदी।
बिग-तिग-चदु-पंचक्खा,
तसजीवा होंति संखादी।।

ससरीरा अरहंता,
केवल-णाणेण मुणिय-सयलत्था।
णाण-सरीरा सिद्धा,
सव्वुत्तम - सुक्ख - संपत्ता।।

जीवा हवंति तिविहा,
बहिरप्पा तह य अंतरप्पा य।
परमप्पा वि य दुविहा,
अरहंता तह य सिद्धा य।।

'जीव' देह से भिन्न, अनादि-निधन है,
वह अरूप-उपयोग-लक्षणान्वित है।
है स्वकीय कर्मों का कर्ता-भोक्ता,
वह स्वदेह-परिमाण ऊर्ध्वगतियुत है ॥

भूमि-तेज-जल-वायु-वनस्पतिकायिक,
एकेन्द्रिय–स्थावर हैं जाने जाते।
द्वि–त्रि–चतु -पच–इन्द्रिय शखादिक,
संसारी जीवो मे 'त्रस' कहलाते ॥

हैं सशरीरी 'अर्हत्' केवलज्ञानी,
निज चरणो से जग को तीर्थ बनाते।
हैं भवमुक्त श्रेष्ठ सुख के अधिगामी,
ज्ञान–शरीरी जीव 'सिद्ध' कहलाते ॥

जीवात्मा के तीन भेद है—
'बहिरात्मा' फिर 'अन्तरात्मा'।
अर्हत् और सिद्ध भेदो से,
होता चरम भेद 'परमात्मा' ॥

अक्खाणि बहिरप्पा,
अंतरप्पा हु अप्पसंकप्पो ।
कम्म-कलंक-विमुक्को,
परमप्पा भण्णए देवो ।।

आरुहवि अंतरप्पा,
बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण ।
झाइज्जइ परमप्पा,
उवइट्ठं जिण-वरिंदेहिं ।।

रागा य दोसो वि य कम्मवीयं,
कम्मं च मोह-प्पभवं वयंति ।
कम्मं च जाईमरणस्स मूलं,
दुक्खं च जाईमरणं वयंति ।।

णाणस्सावरणिज्जं दंसणावरणं तहा,
वेयणिज्जं तहा मोहं आउकम्मं तहेव य ।
नामकम्म च गोयं च अतरायं तहेव य,
एवमेयाइं कम्माइं अट्ठेव उ समासओ ।।

वहिरात्मा कहते हैं अक्षगणों को,
आैर आत्म-संकल्प अन्तरात्मा है।
आत्म-साधना-साध्य, कर्म-पको से,
निष्कलंक निर्वन्धित परमात्मा है ।।

जिन-वचनो के रत्नों का सचय करके तुम,
मन से, वचन-काय से त्यागो वहिरात्मा को।
और अन्तरात्मा मे सम्यक् आरोहण कर,
शुद्ध-भाव होकर फिर ध्याओ परमात्मा को ।।

राग-द्वेष हैं वीज कर्म के,
मोह कर्म का प्रभव कहाता।
जन्म-मरण का मूल कर्म है,
भव-बंधन है दुख-प्रदाता ।।

ज्ञान-दर्शनावरण-द्विविध हैं,
वेदनीय हैं, मोहनीय हैं।
आयु, नाम गोत्रान्तराय—ये
आठ कर्म उल्लेखनीय है ।।

आसवदारेहिं सया,
हिंसाईएहिं कम्ममासवइ ।
जइ नावाइ विणासो,
छिद्दे हि जलं उयहिमज्झे ।।

भावेण जेण जीवो,
पेच्छदि जाणादि आगद विसये ।
गच्छंति कम्मभावं,
ण हि ते जीवेण परिणमिदा ।।

भोगामिसदोसविसन्ने,
हिय-निस्सेयस-बुद्धिवोच्चत्थे ।
बाले य मन्दिए मूढे,
बज्झइ मच्छिया व खेलम्मि ।।

कायसा वयसा मत्ते,
वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।
दुहओ मलं संचिणइ,
सिसुणागु व्व मट्टियं ।।

'आस्रव' है ऐसा द्वार, कि जिससे होकर,
हिंसादिक कर्मो का आस्रव झरता है।
सागर-गत नौका मे छिद्रो से होकर,
जैसे विध्वसक जल-प्रवाह भरता है।।

राग-द्वेष-भावो से हो संपृक्त,
इन्द्रिय-विषयागत द्रव्यो को जब जीव,
जानता-देखता, हो उनमे उपरक्त।
भावो मे उसका यह बरबस उपराग,
परिणत करता नूतन कर्मों का बध।
यह 'बध'-रूप जैनागम मे है उक्त।।

आत्मा के दूषक भोगामिष मे डूबा,
हित-निःश्रेयस-मतिहीन, मूढ अज्ञानी।
है कर्म-जाल मे ऐसे ही बँध जाता,
जैसे श्लेष्मा मे हो मक्खी लिपटानी।।

बन नारी औ' धन का लोभी, तन और वचन से मतवाला,
जपता रहता है राग-द्वेष के दुहरे मनको की माला।
इस तरह जीव निज कर्मों के मल ही का सचय करता है,
जिस तरह केचुआ मुख-तन से मिट्टी का सचय करता है।।

मिच्छत्ताविरदी वि य,
कसाय जोगा य आसवा होंति ।
संजम-विराय-दंसण–
जोगाभावो य संवरओ ।।

रुंधिय-छिद्दसहस्से,
जलजाणे जह जलं तु णासवदि ।
मिच्छत्ताई-अभावे,
तह जीवे संवरो होइ ।।

जहा महातलायस्स सन्निरुद्धे जलागमे,
उस्सिचणाए तवणाए कमेण सोसणा भवे ।
एवं तु संजयस्सावि पावकम्मे-निरासवे,
भवकोडी-सचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ ।।

णिव्वाण–सुत्तं

न य संसारम्मि सुहं,
जाइ-जरा-मरण-दुक्खगहियस्स ।
जीवस्स अत्थि जम्हा,
तम्हा मुक्खो उवादेवो ।।

मिथ्यापन, अविरति, कषाय औ' योग—
ये चार हेतु हैं आस्रव के विख्यात।
सयम, विराग, दर्शन औ' योगाभाव—
सवर के चार हेतु है सम्यग्ज्ञात॥

जिस तरह हजारो छिद्र बद करने पर,
नौका मे जल का नही प्रसर होता है।
वैसे ही आस्रव—द्वार रोक देने से,
जीवो मे पापमुक्त 'सवर' होता है॥

पानी आना रुकने, उलीचने, तपने
से जैसे कोई ताल शुष्क होता है।
उस तरह अनास्रव सयमधन का तप से
जन्मो का सचित कर्म जीर्ण होता है॥
अघ-कर्म जहाँ निर्जीर्ण हुआ करते है।
जिन उसे 'निर्जरा' तत्व कहा करते हैं॥

निर्वाण—सूत्र

जन्म—जरा औ' मरण दुःख से
ग्रस्त लोक मे कहाँ श्रेय है?
अत. दु.ख से त्रस्त जीव के
लिए मोक्ष ही उपादेय है॥

कम्ममल-विप्पमुक्को,
उड्ढं लोगस्स अंतमधिगन्ता।
सो सव्वणाणदरिसी,
लहदि सुहमणिंदियमणंतं॥

ण वि दुक्खं ण वि सुक्खं,
ण वि पीडा णेव विज्जदे बाहा।
ण वि मरणं ण वि जणणं,
तत्थेव य होइ णिव्वाणं॥

णिव्वाणं ति अवाहंति,
सिद्धी लोगग्गमेव य।
खेमं सिवं अणावाहं,
जं चरन्ति महेसिणो॥

सव्वगंथ-विमुक्को,
सीईभूओ पसंतचित्तो अ।
जं पावइ मुत्तिसुहं,
न चक्कवट्टी वि तं लहइ॥

धर्म चक्र से वध-बेडियो का मुमुक्षु भजन करता है,
कर्म-मलों से मुक्त दशा मे आत्मा ऊर्ध्वगमन करता है।
और पहुँच लोकान्तदेश मे सर्वज्ञान-द्रष्टा पद पाकर,
वही अनन्त अतीन्द्रिय सुख का निराबाध सेवन करता है ।।

जहाँ न सुख है, औ' न दुख है,
जन्म-मरण का नही विधान।
जहा न पीडा और न बाधा,
वही – वही होता निर्वाण ।।

है निर्वाण नाम उस पद का,
जिसे प्राप्त करते महर्षिजन।
जो अबाध, शिव, अनाबाध है,
सिद्ध, क्षेम, लोकाग्र, सनातन ।।

शीतीभूत, ग्रथियो से परिमोचित,
पूर्ण-शान्त-मन मुनि जो सुख पाता है।
वैसा मुक्ति-भरा सुख कभी जगत् मे,
क्या किसी चक्रवर्ती को मिल पाता है ??

———

दर्शन-पर्व

अणेगंत-सुत्तं

जेण विणा लोगस्स वि,
ववहारो सव्वहा न निव्वहइ ।
तस्स भुवणेकगुरुणो,
णमो अणेगंतवायस्स ।।

जो ण पमाण-णयेहिं,
णिक्खेवेणं णिरिक्खदे अत्थं ।
तस्साजुत्तं जुत्तं,
जुत्तमजुत्तं च पडिहादि ।।

णाणं होदि पमाणं,
णओ वि णादुस्स हिदय-भावत्थो ।
णिक्खेओ वि उवाओ,
जुत्तीए अत्थ-पडिगहणं ।।

अनेकान्त-सूत्र

जिसके विन निभता ही नही कभी
कोई भी लोक का चलन।
त्रिभुवन के एक-मात्र गुरुवर, उस
'अनेकान्तवाद' को नमन ।।

जो प्रमाण, नय, निक्षेपो से
करता नही अर्थ का ज्ञान,
उसको सदा अयुक्त-युक्त मे
होता है उलटा प्रतिभान ।।

नाम 'प्रमाण' ज्ञान का दूजा,
'नय' ज्ञाता का हृद्गत आशय।
है 'निक्षेप' उपाय ज्ञान का,
इनसे करो अर्थ का सश्रय ।।

गुणाणमासओ दव्वं,
एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं तु,
उभओ अस्सिया भवे॥

दव्वं पज्जव-विउयं,
दव्व-विउत्ता य पज्जवा णत्थि।
उप्पाय-ट्ठिइ-भंगा,
हंदि दवियलक्खणं एयं॥

पुरिसम्मि पुरिस-सद्दो,
जम्माई-मरणकाल-पज्जन्तो।
तस्स उ बालाईया,
पज्जव-जोया बहु-वियप्पा॥

पमाण-सुत्तं

गेह्णइ वत्थुसहावं,
अविरुद्धं सम्मरूवं जं णाणं।
भणियं खु तं पमाणं,
पच्चक्ख - परोक्ख - भेएहिं॥

द्रव्य गुणो का आश्रय होता,
गुण वे है, जो एक द्रव्य पर आधारित है।
पर्यव का लक्षण क्या होता ?
वे, जो द्रव्य और गुण दोनो पर आश्रित है ।।

बिना द्रव्य पर्यव ना होता,
बिन पर्यव ना होता द्रव्य।
प्रतिपल उत्पाद-व्यय-ध्रुवता,
से लक्षित है होता द्रव्य ।।

पुरुष जन्म से मरणकाल तक,
होता 'पुरुष' शब्द से अभिहित।
पर बाल्यादिक बहुविध पर्यव,
उसमे होकर होते विगलित ।।

प्रमाण-सूत्र

जो अविरुद्ध और सम्यक्,
वस्तु-स्वभाव का करता ज्ञान ।
है प्रत्यक्ष-परोक्ष भेद से,
कहलाता वह ज्ञान – 'प्रमाण' ।।

संसय-विमोह-विब्भम-
विवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ।
गहणं सम्मं णाणं,
सायार - मणेय - भेयं तु ।।

तत्थ पंचविह नाणं,
सुय आभिनिबोहियं ।
ओहिनाणं तु तइयं,
मणनाणं च केवलं ।।

पंचेव होंति णाणा,
मदि-सुद-ओहीमणं च केवलयं ।
खय-उव-समिया चउरो,
केवलणाणं हवे खइयं ।।

जीवो अक्खो अत्थ-
व्ववण-भोयणगुणन्निओ जेणं ।
तं पइ वट्टइ नाणं,
जे पच्चक्खं तयं तिविहं ।।

सशय-विमोह-विभ्रम रूपो से वर्जित,
जो आत्मरूप-पररूप-ग्रहण होता है।
साकार वही है सम्यग्ज्ञान जगत् मे,
बहुभेदो मे जिसका कि गणन होता है।।

मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय,
औ' केवल ज्ञान।
पाँच प्रकारो मे विभक्त,
है सम्यग् ज्ञान।।

मति-श्रुत-अवधि-मन -केवल-
ये मात्र पाँच होते है ज्ञान।
क्षायोपशमिक प्रथम चार है,
औ' क्षायिक है केवल-ज्ञान।।

अर्थ-व्यापन-भोजनगुण से धरता जीव 'अक्ष' अभिधान,
जो कि 'अक्ष के प्रति' है, उसको कहते है 'प्रत्यक्ष' प्रमाण।
अवधि, मन पर्यय औ' केवल—है प्रत्यक्ष त्रिविध ये ज्ञान।।

अक्खस्स पोग्गलकया,
जं दव्विन्दियमणा परा तेणं ।
तेहिं तो जं नाणं,
परोक्खमिह तमणुमाणं व ।।

होंति परोक्खाइं मइ-
सुयाइं जीवस्स परनिमित्ताओ ।
पुव्वोवलद्ध-संबंध-
सरणाओ वाणुमाणं व ।।

णय-सुत्तं

ज णाणीण वियप्पं,
सुयभेयं वत्थु-अंस-संगहणं ।
तं इह णयं पउत्तं,
णाणी पुण तेण णाणेण ।।

णिच्छय-ववहार-णया,
मूलभेया णयाण सव्वाणं ।
णिच्छयसाधनहेउं,
पज्जय-दव्वत्थियं मुणह ।।

पुद्गलकृत द्रव्येन्द्रिय-मन को,
सदा 'अक्ष से पर' तू जान।
उनसे निर्वृत ज्ञान कहाता,
है 'परोक्ष' – जैसे अनुमान॥

जो कि जीव के परनिमित्त है,
है परोक्ष वे मति-श्रुतज्ञान।
पूर्व-प्राप्त सम्बन्ध-स्मरण से भी,
परोक्ष — जैसे अनुमान॥

नय–सूत्र

किसी वस्तु के एक अश का जिसमे ग्रहण किया जाता है,
श्रुत का भेद और ज्ञानी का वह विकल्प 'नय' कहलाता है।
सच पूछो तो नय का ज्ञानी ही ज्ञानी बन पाता है,
जो इसके विपरीत चले वह अज्ञानी रह जाता है॥

निश्चय औ' व्यवहार-युगल नय,
सभी नयो के मूल जानिये।
द्रव्यार्थिक - पर्यायार्थिक नय,
निश्चय – साधन – हेतु मानिये॥

जो सिय भेदुवयारं,
धम्माणं कुणइ एगवत्थुस्स।
सो ववहारो भणियो,
विवरीओ णिच्छयो होइ॥

ववहारोऽभूयत्थो,
भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु,
सम्माइट्ठी हवइ जीवो॥

तित्थयर-वयण-संगह-
विसेसपत्थार - मूलवागरणी।
दव्वट्ठिओ य पज्जव-
णओ, य सेसा वियप्पा सिं॥

णियय-वयणिज्ज-सच्चा,
सव्वनया परवियालणे मोहा।
ते उण ण दिट्ठसमओ,
विभयइ सच्चे व अलिए वा॥

एक वस्तु के धर्मो मे जो,
करता स्याद् - भेद उपचार।
वह 'व्यवहार' कहा जाता है,
'निश्चय' तद्विपरीत विचार।।

'निश्चय-नय' भूतार्थ ख्यात है,
अभूतार्थ 'व्यवहार' कहाता।
निश्चय - नयाश्रयी जीवात्मा,
सम्यग् - दृष्टि - युक्त बन जाता।।

तीर्थंकरो के वचन द्विविध-'सामान्य-विशेष' कहाते है,
उन वचनो के मूल व्याकरण जग मे 'नय' कहलाते है।
द्रव्यार्थिक-पर्यव नामो से होते नय के उभय प्रकार,
शेष सभी इनके विकल्प है, इनके ही होते विस्तार।।

चूँकि सभी नय निज वक्तव्यो मे तो सच्चे ही होते है,
किन्तु दूसरे नय-कथनो के यदि विरुद्ध हो, तो मिथ्या है।
विविध नयो पर इसीलिए तो 'अनेकान्त' के ज्ञानी द्रष्टा,
ये सच्चे है, वे झूठे है—ऐसा कभी नही कहते है।।

पज्जय णउणं किच्चा,
दव्वं पि य जो हु गिण्हइ लोए ।
सो दव्वत्थिय भणिओ,
विवरीओ पज्जयत्थिणओ ।।

नेगम-संगह-ववहार–
उज्जुसुए चेव होइ बोधव्वा ।
सद्दे य समभिरूढे,
एवंभूए य मूलनया ।।

पढमतिया दव्वत्थी,
पज्जयगाही य इयर जे भणिया ।
ते चदु अत्थपहाणा,
सद्द–पहाणा हु तिण्णि या ।।

जम्हा ण णएण विणा,
होइ णरस्स सियवाय-पडिवत्ती ।
तम्हा सो बोहव्वो,
एयंतं हन्तुकामेण ।।

पर्यय को कर गौण, द्रव्य को,
सदा लोक में करे गृहीत।
वह 'द्रव्यार्थिक' नय कहलाता,
'पर्ययार्थि' – नय तद्विपरीत।।

नैगम, संग्रह, व्यवहार और
ऋजुसूत्र, शब्द सँग समभिरूढ।
अन्तिम है एवंभूत – यही
है सात मूल नय – द्विविधरूढ।।

है प्रथम तीन नय द्रव्यार्थिक,
पर्यायार्थिक है शेष चार।
शब्द – प्रधान है शेष तीन,
अर्थप्रधान है प्रथम चार।।

नय के बिना किसी को भी,
ना होता स्याद्वाद का ज्ञान।
जो एकान्त मिटाना चाहे,
समझे वह नय का विज्ञान।।

णियम-णिसेहणसीलो,
णिपादणादो य जो हु खलु सिद्धो ।
सो सियसद्दो भणिओ,
जो सावेक्ख पसाहेदि ॥

सत्तेव हुंति भंगा,
पमाण-णय-दुणय-भेदजुत्ता वि ।
सिय-सावेक्खं पमाण.
णएण णय-दुणय-णिरवेक्खा ॥

अत्थि त्ति णत्थि दो वि य,
अव्वत्तव्वं सिएण सजुत्तं ।
अव्वत्तव्वा ते तह,
पमाणभंगी सुणायव्वा ॥

जमणेग-धम्मणो वत्थुणो,
तदंसे च सव्व–पडिवत्ती ।
अंध व्व गयावयवे तो,
मिच्छादिट्ठिणो वीसु ॥

जो कि नियम को करे निषिद्ध,
और निपातन से हो सिद्ध।
उसी शब्द को कहते 'स्यात्',
जो सापेक्ष करे हर बात ।।

स्याद्वाद के सात भग ह – सप्रमाण नय-दुर्नय,
स्यात्-शब्द–सापेक्ष भग को हम 'प्रमाण' कहते है ।
नय से जो सापेक्ष भग है – वे 'नय' कहलाते है,
दोनो से निरपेक्ष भग है – वे 'दुर्नय' रहते है ।।

'स्यात्' शब्द से युक्त 'अस्ति', फिर 'नास्ति',
और फिर 'अस्ति – नास्ति' है,
'अवक्तव्य', फिर 'अस्ति,' 'नास्ति', फिर
'अस्ति-नास्ति' से युक्त वही पद ।
सप्त रूप मे स्याद्वाद की
यह प्रमाण - भगी होती है ।।

अधे जैसे हाथी के विभिन्न अगो को,
मोघ-दृष्टिवश हाथी मान लिया करते है ।
वैसे ही अज्ञानी अनेकान्त विषयो के
अशज्ञान को पूरा ज्ञान कहा करते है ।।

जं पुण समत्तपज्जाय-
वत्थुगमग त्ति समुदिया तेणं ।
सम्मत्तं चक्खुमञ्रो,
सव्व-एयावयवगहणे व्व ॥

पिउ-पुत्त-णत्तु-भव्वय,
भाऊणं एग-पुरिस-संबंधो ।
ण य सो एगस्स पिय,
त्ति सेसयाणं पिया होइ ॥

सामन्न अह विसेसे,
वव्वे णाणं हवेइ अविरोहो ।
साहइ तं सम्मत्तं,
णहु पुण तं तस्स विवरीयं ॥

सव्वे समयंति सम्मं,
चेगवसाओ नया विरुद्धा वि ।
भिच्च-ववहारिणो इव,
राओदासीण - वसवत्ती ॥

भिन्न अवयवो का समुदय हाथी होता है–
ऐसा सम्यग्ज्ञान दृष्टिमन्तो को होता।
वैसे ही नय - समुदय से बहुधर्म वस्तु के
पर्यायों का पूर्ण ज्ञान सन्तो को होता ।।

पिता-पुत्र-पोता-पति-भ्राता के सम्बन्धो का आधार–
एक समय मे एक पुरुष कैसे बन जाता–करो विचार ?
एक पुरुष ही भिन्न प्रसगो से अनेक बन जाता है,
पिता एक का, क्या सारे रिश्तो का पिता कहाता है ?

जो सामान्य - विशेष नाम के दो धर्मों से युक्त,
द्रव्यमात्र मे होने वाला है अविरोधी ज्ञान।
वही जगत् मे सम्यक्ता का साधक बन सकता है,
जो इसके विपरीत रहे - वह है बाधक अज्ञान ।।

स्याद्वाद नृप के समान है, सारे नय उसके दरबारी,
राजा के वश मे विरोध तज, रहते है सम्यग् व्यवहारी।
स्याद्वाद तो उदासीन है, सारे नय सापेक्षाचारी,
स्याद्वाद के वश मे आकर बन जाते सम्यग्-व्यवहारी ।।

णाणाजीवा णाणा-
कम्म णाणाविहं हवे लद्धी।
तम्हा वयण-विवादं,
सग-पर-समएहिं वज्जिज्जा॥

संकेज्ज याऽसंकितभाव भिक्खू,
विभज्जवाय च वियागरेज्जा।
भासादुगं धम्मसमुट्ठितेहिं,
वियागरेज्जा समया सुपन्ने॥

णिक्खेव-सुत्तं

जुत्ती-सुजुत्तमग्गे,
जं चउभेएण होइ खलु ठवणं।
कज्जे सदि णामादिसु,
त णिक्खेवं हवे समए॥

समापण-सुत्तं

एवं से उदाहु अणुत्तरनाणी,
अणुत्तरदंसी अणुत्तर-णाण-दंसणधरे।
अरहा नायपुत्ते भगवं,
वेसालिए वियाहिए त्ति बेमि॥

नाना जीव, कर्म हैं नाना,
नाना-विधा लब्धियाँ उनकी।
इसीलिए निज-पर समयो से,
वचन - विवाद सदा वर्जित है ।।

शंकारहित सुप्रज्ञ भिक्षु भी सूत्रार्थों मे,
शंकित रहकर स्याद्वाद-मय वचन उचारे।
धर्म – समुत्थित साधुजनो मे समतापूर्वक,
प्रतिपद सत्य और अनुभय भाषा व्यवहारे ।।

निक्षेप-सूत्र

नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव मे कभी कार्यवश,
कर देना पदार्थ का युक्तिपूर्ण संस्थापन।
चार-भेदमय वह 'निक्षेप' कहा जाता है,
वह उपाय है जिससे होता अर्थ–विबोधन ।।

समापन–सूत्र

त्रिशला-तनय, अनुत्तरदर्शी और अनुत्तरज्ञानी,
दिव्य अनुत्तर-ज्ञान-दृष्टिधर, अर्हत्, प्रभु, विज्ञानी।
ज्ञातपुत्र श्री महावीर ने यह उपदेश दिया था,
और पवित्र विशालानगरी को कृतकृत्य किया था ।।

जिण-वयण-मोसहमिण,
विसयसुह-विरेयणं अमिदभयं ।
जर-मरण-वाहि-वरणं,
खयकरणं सव्वदुक्खाणं ।।

जं इच्छसि अप्पणतो,
ज च ण इच्छसि अप्पणतो ।
तं इच्छ परस्स वि या,
एत्तियगं जिण - सासणं ।।

जिण - वयणे अणुरत्ता,
जिणवयणं जे करेंति भावेण ।
अमला असंकिलिट्ठा,
ते होंति परित्तसंसारी ।।

ससमय-परसमयविऊ,
गंभीरो दित्तिमं सिवो सोमो ।
गुण-सय-कलिओ जुत्तो,
पवयणसारं परिकहेउं ।।

विषय–सुखो का परम विरेचन,
जरा-मरण-जनि-व्याधि-हरण है।
सब दुःखो का क्षयकारी यह,
अमृतौषध - सम जिनशासन है ॥

जो तुम अपने लिए चाहते,
चाहो वही दूसरो के हित।
इसके परे कभी मत जाओ,
यह है सार-रूप मे जिनमत ॥

जो जिन–वचनो के अनुरागी,
तथा भक्तिमय है अनुसारी।
वे निर्मल निष्क्लेश जीव ही,
बनते है परीत ससारी ॥

जो गम्भीर, दीप्तिमय, शिव है, ✓
सौम्य, स्व-पर-समयो का ज्ञाता।
युक्त, गुणी है वही सूत्र–
प्रवचन का अधिकारी कहलाता ॥

भद्दं मिच्छा-दंसण-
समूह-मइयस्स अमयसारस्स ।
जिणवयणस्स भगवओ,
संविग्ग - सुहाहि - गम्मस्स ।।

जमल्लीणा जीवा,
तरंति संसार - सायरमणंतं ।
तं सव्व-जीव-सरणं,
णंददु जिणसासणं सुइरं ।।

लद्धं अलद्धपुव्वं,
जिण-वयण-सुभासिदं अमिदभूदं ।
गहिदो सुग्गइमग्गो,
णाहं मरणस्स वीहेमि ।।

जो मिथ्यादर्शन—समूहमय,
तत्त्वरूप है, अमृतसार है।
मुक्तिकाम निष्कलुष हृदय-पट,
मे जलवत् जिसका प्रसार है।
जो आगम पद से प्रसिद्ध है,
रत्नत्रय का सूत्रधार है।
उसका हो कल्याण सदा,
भगवत्स्वरूप जो जिनोद्गार है ॥

जिसमे लीन जीव तर जाते,
इस असीम ससार-सिन्धु को।
सब जीवो का शरणरूप वह,
जिन-शासन जग मे नन्दित हो ॥

पा लिया है आज पहली बार,
जिनवचन, जो है सुधा-द्रवमय।
सुगति-पथ पर चल पडा हूँ मैं,
अब नही मुझको मरण का भय ॥

जैन जयतु शासनम्।
जैन-शासन की विजय हो ॥

सृजन–सुमन

अहं-ग्रन्थि जो काटे मन की, सच्चा नमन वही होता है।
जो करनी का बीज बन सके, सच्चा कथन वही होता है।।
कोटि-कोटि आँखों के आँसू, जिसके दो नयनों से छलकें।
जिसका मन जग का दरपन हो, सच्चा श्रमण वही होता है।।

वर्धमान ! तुम 'महावीर' थे ।

धर्मायुध से पूर्ण सुसज्जित,
तुम भव-रण के समर-धीर थे ।
वर्धमान !
तुम 'महावीर' थे ।

काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह-मात्सर्य सरीखे
तुमने अन्तःशत्रु मिटाये,
तुमने बाह्य वैरियो को भी
निपुण अहिंसा के महास्त्र से
किया पराजित ।
धर्म-विजय का शखनाद कर
चक्र-प्रवर्तन किया विश्व में श्रमण-धर्म का ।
वर्धमान तुम महावीर थे ।

जिन–प्रतिपादित श्रमण–धर्म मे,
सच्चा वीर वही होता है–
जो कर्मों से बद्धजनो को
बन्धन–मुक्त किया करता है।
वर्धमान ! तुम महावीर थे ।

जिन-प्रतिपादित श्रमण–धर्म मे
सच्चा वीर वही होता है–
जो अति–क्रोध-मान का हन्ता
है अरि–हन्ता ।
जो कि लोभ मे महानरक का द्वार निहारे,
जो हिंसा से विरत रहे नित
कर्म–स्रोत का उच्छेदन कर
जो भव-बन्धन काटे सारे।
वर्धमान ! तुम महावीर थे ।

जिन-प्रतिपादित श्रमण-धर्म,
सच्चा वीर वही होता है
जिसमें भय की या लज्जा की ग्रंथि नहीं है,
जो शतदल-सा
जलधारा में रहकर जल से नहीं लिपटता,
ऐसा जो निर्ग्रन्थ और निर्लेप श्रमण है,
जिसकी दृष्टि
सदा समदर्शी ही रहती है,
वही वीर है।

वर्धमान! तुम महावीर थे।

तुमने शुद्ध आचरण का
जो पन्थ दिखाया,

अनगारो, श्रमणों, उपासकों का
वह सच्चा मोक्षमार्ग है,
तुमने 'पच महाव्रत' का जो मत्र सिखाया,
वही मुक्ति का महामंत्र है।

धर्म-चक्र के तुम्ही प्रवर्तक
महा-मार्ग के तुम्ही प्रदर्शक
और तुम्ही तो
महामंत्र के उद्घोषक थे,
तुम्ही केवली थे,
जिनेन्द्र थे,
शान्त-धीर थे।
वर्धमान !
तुम महावीर थे।

जय जिनेन्द्र

प्रेम से कहो सभी,
भक्ति से सुनो सभी,
हृदय में गुनो सभी,
तीर्थङ्कर महावीर वर्धमान जय जय।
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र जय जय।।

*

जिनका नाम कोटि-कोटि मंगलो की खान है,
जिनका रूप दिव्य सूर्य सा प्रकाशमान है।
जिनका धर्म सत्य की उपासना का धर्म है,
जिनका ध्यान ही अखण्ड मुक्ति का विधान है।।
वीतराग, वीतद्वेष, गुणनिधान, जय जय।
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र जय जय।।

* *

इस धरा की कोख जिनके दिव्य जन्म से फली,
जिनके पुण्य कर्म से ही ज्योति धर्म की जली ।
त्याग और विराग - भाव जिनमे मूर्तिमन्त थे,
शालवृक्ष के तले जो बन गये थे केवली ।।
महाश्रमण—त्रिशला के सुखविधान, जय जय ।
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र, जय जय ।।

* * *

'जिन' के पथ मे पुनीत आचरण प्रधान है,
जिनकी दृष्टि ऊँच - नीच पर सदा समान है ।
तप - अहिसा - सयम ही जिनका धर्मचक्र है,
जिनका शब्द - शब्द कोटि - ग्रन्थ से महान है ।।
अनेकान्त दर्शन के शुद्धज्ञान, जय जय ।
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र, जय जय ।।

गाथा-संकेत-सूची

गाथाश	सकेत-स्थल	पृष्ठांक
अक्खस्स पोग्गलकया	समणसुत्त ६८७	१२८
अक्खाणि बहिरप्पा	मोक्षप्राभृत ५	११२
अज्झत्थ सव्वओ सव्व	उत्तराध्ययन सूत्र ६,७	६२
अट्ठविह कम्मवियला	तिलोयपण्णत्ति १,१	८
अणसणमूणोयरिया	उत्तराध्ययन सूत्र ३०,८	३२
अण्णाणघोरतिमिरे	तिलोयपण्णत्ति १,४	१०
अत्थित्ति णत्थि दोवि य	नयचक्र २५५	१३४
अप्पडिकुट्ठ उवधि	प्रवचनसार ३,२३	६८
अप्पणट्ठा परट्ठा वा	दशवैकालिक सूत्र ६,१२	६६
अप्पा अप्पम्मि रओ	भावपाहुड ३१	५४
अप्पा कत्ता विकत्ता य	उत्तराध्ययन सूत्र २०,३७	४४
अप्पा खलु समय	दशवैकालिक सूत्र चूलिका २,१६	४८
अप्पा चेव दमेयव्वो	उत्तराध्ययन सूत्र १,१५	४४
अप्पाणमेव जुज्झाहि	उत्तराध्ययन सूत्र ९,३५	४६
अप्पा नई वेयरणी	उत्तराध्ययन सूत्र २०,३६	४४
अरहत भासियत्थ	सुत्तपाहुड १	१८
अरहता मगल	आवश्यक सूत्र ४,१	६
अरहंता लोगुत्तमा	आवश्यक सूत्र ४,१	६
अरहते सरण पवज्जामि	आवश्यक सूत्र ४,१	६
अरिहता असरीरा	समणसुत्त १२	१०
अलोलुय मुहाजीवि	उत्तराध्ययन सूत्र २५,२८	८६

—o—